236 क लेख –न्याय प्रणाली और उसका प्रस्तावित स्वरूप
236 ख लेख – कर प्रणाली और आर्थिक असमानता
236 ग प्रष्न–समाज मे श्रम का स्थान
236 घ प्रष्न–समान नागरिक संहिता
236 च प्रष्न – विधायिका और उसका स्वरूप
236 छ प्रष्न–नई व्यवस्था के लिये महत्वपूर्ण संविधान संषोंधन प्रस्तावित
236 ज प्रष्न– भाषा
236 झ प्रष्न– चुनाव प्रणाली का स्वरूप
236 ट प्रष्न– संविधान संषोधन
236 ठ प्रष्न– शस्त्र धारण

नोट–
(1)भावी भारत का संविधान नामक मेरी पंद्रह वर्ष पूर्व लिखी हुई पुस्तक का आधा भाग ज्ञान तत्व 235 मे आपके पास गया है। शेष आधा भाग ज्ञान तत्व 236 के रूप मे जा रहा है।
(2) प्रत्येक शनिवार की रात 8:30 बजे ए टू जेड टी0 वी0 पर बजरंग मुनि जी का किसी एक विषय पर इंटरव्यू प्रसारित होता है। ए टू जेड डिष एंटिना मे 579 नम्बर पर तथा विग टी0 बी0 मे 425 नम्बर चैनल पर आता है। आप देखे तथा पत्र द्वारा अपने प्रष्न भेजे। उत्तर अगले किसी कार्यक्रम मे टी0 बी0 पर अथवा ज्ञान तत्व के माध्यम से जायगा।

भावी भारत का संविधान भाग दो

न्याय प्रणाली और उसका प्रस्तावित स्वरूप

किसी भी व्यवस्था में न्याय की अनिवार्य आवष्यकता होती है। बिना न्याय के कोई व्यवस्था चल ही नहीं सकती। प्राचीन काल में न्याय की प्रणाली पर कई प्रयोग हुए। किसी काल में राजा ही न्याय का एक मात्र माध्यम था तो किसी अन्य काल में पंच मिलकर न्याय किया करते थे। कभी–कभी गांव के लोग भी बैठकर न्याय किया करते थे और कभी राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी ही न्याय करता था। इस तरह न्याय की भिन्न भिन्न प्रणालियॉ समाज में प्रचलित थीं। राजा द्वारा किया जाने वाला न्याय आंषिक न्याय ही होता था। दो व्यक्तियों के बीच विवाद होने की स्थिति में तो राजा का न्याय बहुत त्रुटिपूर्ण नहीं होता था किन्तु राज्य के कानूनों के मामले में राजा का न्याय प्रायः हितों के अनुरूप ही होता था। पंच द्वारा प्रतिपादित न्याय आम तौर पर न्याय का रूप न होकर समझौते का रूप होता था। वर्तमान न्याय प्रणाली न राजा द्वारा की जाने वाली प्रणाली है न ही पंचों द्वारा बल्कि यह प्रणाली बीच की है जिसमें राज्य द्वारा किसी निर्मित प्रणाली के आधार पर न्याय व्यवस्था संचालित होती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत राज्य द्वारा नियुक्त व्यक्ति दोनों पक्षों के बीच दोनों के सहमत होने तक समीक्षा करते हुए न्याय करते हैं। और सहमत पक्ष को ऐसे ही किसी अन्य व्यक्ति से भी समीक्षा कराने का अधिकार है।

वर्तमान न्याय प्रणाली के अनेक गुण दोष हैं। यह प्रणाली पंच न्याय प्रणाली से अधिक खर्चीली, बिलम्ब करने वाली तथा अविष्वसनीय है। वर्तमान स्थिति यह है कि न्यायालयों में करोड़ों मुकदमें न्याय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अनेक मुकदमें तो पचीस से पचास वर्ष तक से लम्बित हैं। न्याय यदि समय सीमा में उपलब्ध न हो तो उसकी गुणवता घटती जाती है। यदि इसे कसौटी माना जाय तो वर्तमान न्याय प्रक्रिया षून्य गुणवाली मानी जायेगी। किन्तु जब व्यक्ति में चरित्र का संकट हो तो ऐसी स्थिति में संदेहास्पद चरित्र वालों पर तो न्याय का दायित्व बिल्कुल नहीं दिया जा सकता। चरित्र का संकट तो वर्तमान न्यायाधीषों पर भी उसी तरह लागू होता है। जैसे पंचों पर किन्तु वर्तमान न्याय प्रणाली में अपील द्वारा समीक्षा का प्रावधान होना तथा न्याय का तरीका किसी वैधानिक प्रक्रिया के अन्तर्गत बधा हुआ होना, दो ऐसे गुण हैं, जिनका अभाव पंचायत प्रणाली में स्पष्ट है। अतः न्याय प्रणाली के कोई भी प्रयोग अब तक सफल नहीं हुए हैं।

न्याय में सबसे बड़ी बाधा राज्य होता है। किन्हीं दो इकाईयों के बीच विवाद की स्थिति में उचित अनुचित का निर्णय ही न्याय होता है। राज्य भी स्वयं में एक इकाई है। अतः न्यायिक प्रक्रिया में राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिये। आम तौर पर सिद्धांत रूप से प्रजातान्त्रिक देष इतनी औपचारिकता निभाते भी हैं किन्तु प्रायः यह देखने में आता है कि राज्य अपने मामलों में न्याय को प्रभावित करने का प्रयास करता ही है। अनेक प्रकार के मामलों को न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखने का एक फैषन सा षुरू हो गया है। न्यायालयों का बोझ कम करने के नाम पर राज्य द्वारा स्वयं की न्यायायिक प्रक्रिया पूरी करने की प्रवृत्ति घातक रूप ग्रहण कर रही है। इससे न्याय की आत्मा ही मर रही है। न्याय प्रणाली में राज्य के हस्तक्षेप का ही परिणाम है कि आज समाज में न्यायालयों का भय समाप्त हो रहा है और राज्य का आतंक बढ़ रहा है। बलात्कार और खून की अपेक्षा वन अपराध, आवष्यक वस्तु अधिनियम, दहेज उत्पीड़न तथा आदिवासी उत्पीड़न जैसे मामले समाज में आतंक के पर्याय बने हुये है। मैंने एक विद्वान को यह भी सलाह देते सुना है कि यदि 3/7 और 307 में से एक को चुनना हो तो 307 को चुनना अधिक सुविधा जनक है। इसी तरह राज्य की यह हार्दिक इच्छा होती है कि आम आदमी उसका गुलाम हो। गुलाम मानसिकता को स्थापित करने के लिये राज्य समाज की प्रत्येक इकाई को अधिक से अधिक कानूनों के जाल में जकड़ने का प्रयास करता है। इन कानूनों की संख्या जितनी अधिक होगी, इनके उल्लंघन भी उतने ही अधिक होंगे और उसी अनुपात में न्यायालय का काम भी बढ़ेगा। न्यायालय पर बोझ जितना अधिक होगा उतना ही अधिक न्याय कमजोर होता चला जायेगा। वर्तमान भारत की यही स्थिति है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में अपराधों में सजा का प्रतिषत सिर्फ एक है। 90 प्रतिषत तक अपराध तो थाने तक पहुंचते ही नहीं। 10 प्रतिषत में कुछ पुलिस, कुछ गवाह और कुछ न्यायाधीषों द्वारा भ्रष्टाचार की मिलावट कर देने से खत्म हो जाते हैं। 1 प्रतिषत लोग ही सजा पाते हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से 99 प्रतिषत अन्याय ही है।

सफल न्यायिक प्रणाली में चार गुण अनिवार्य हैं–

1. समय बद्ध हो।
2. निष्पक्ष हो।
3. पारदर्षी हो

4. व्यवस्था और न्याय एक दूसरे के पूरक हो।

वर्तमान न्याय प्रणाली सिर्फ पारदर्षिता तक सीमित है। वह न तो समय बद्ध है न ही निष्पक्ष और न ही व्यवस्था की पूरक। मैंने न्याय प्रणाली की सफलताओं ने इन कारणों पर विचार करके प्रस्तावित संविधान में कुछ संषोधन किये हैं:–

दुनिया में दो प्रकार के न्याय सिद्धांत चल रहे हैं– 1. न्याय प्रधान 2. व्यवस्था प्रधान। पष्चिम के देषों ने यह सिद्धांत बनाया है कि चाहे सौ अपराधी छूट जाये पर एक भी निरपराध दण्डित न होने पाये। पष्चिम के देषों ने निरपराध का दण्डित होना व्यवस्था के लिये कलंक माना है। साम्यवादी देषों ने ठीक इसके विपरीत धारणा रखी कि चाहे सौ निरपराध भले ही सजा पा जाये किन्तु एक भी अपराधी न बच पाये। उनकी इस धारणा में भी तर्क है कि किसी अपराधी का छूटना भी तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय ही है। पष्चिम के देषों की सोच मौलिक थी जो साम्यवादी विचारों पर केन्द्रित थी। भारत की न तो अपनी कोई सोच थी न ही किसी एक व्यवस्था के गुण दोषों पर विचार करके निर्णय लेने की परिस्थितियां। अतः भारत ने प्रजातांत्रिक और साम्यवादी देषों की नकल के आधार पर एक तीसरी प्रणाली खड़ी कर दी। दुर्भाग्य से दोनों देषों की न्यायप्रणालियों की विकृतियॉ विकसित भारतीय संविधान का अंग बन गई। पूंजीवादी देष समाजवाद का ढ़ोंग नहीं करते अतः वहां राज्य का हस्तक्षेप समाज की इकाईगत कार्य प्रणाली में कम रहा। फलस्वरूप कानून कम बने और न्यायालयों पर बोझ नहीं बढ़ा। न्यायालयों के निर्णय समय बद्ध होते रहे। दूसरी ओर साम्यवादी देषों को भी प्रजातंत्र का ढ़ोंग नहीं करना था अतः वहां कानून कठोर बने और कानूनी प्रक्रिया छोटी होने से न्याय तत्काल होता रहा। भारत को प्रजातांत्रिक समाजवाद का ढ़ोंग करना था और वह भी किसी चिन्तन के आधार पर न करके दोनों की नकल से खड़ा करना था। अतः भारत ने समाजवादी देषों की नकल करके तो सामाजिक जीवन में अधिकाधिक हस्तक्षेप के कानून बना दिये और पूॅजीवादी देषों की नकल करके जटिल न्यायिक प्रक्रिया निर्धारित कर दी। परिणाम स्वरूप न्याय में भी विलम्ब हुआ और न्यायालयों पर काम का बोझ भी बढ़ता चला गया। न्याय प्रणाली की विफलता ने व्यवस्था को कमजोर कर दिया। समाज की स्थिति यहां तक खराब हो चुकी है कि–

1. आम लोग स्वयं ही दण्डित करने लगे हैं भले ही उसके लिये कानून ही हाथ में क्यों न लेना पड़े। पूरे देष में कानून पर आम लोगों का विष्वास घटा है।

2. पुलिस अनेक मामलों में स्वयं ही दण्ड देने लगी है भले ही वह गैर कानूनी ही क्यों न हो। पूरे देष में मुठभेड़ों का सिलसिला या पुलिस अभिरक्षा में मौतों की बढ़ती घटनाएं प्रत्यक्ष हैं।

3. सरकार न्यायिक प्रक्रिया को किनारे करके कठोर कानून बनाने की दिषा में चलने लगी है। आंतरिक सुरक्षा अधिनियम सरीखें अनेक प्रतिबंधात्मक कानून इसका उदाहरण है।

मैंने भी प्रजातंत्र और समाजवाद के बीच का मार्ग चुना है किन्तु इसमें इन दोनों प्रणालियों की बुराईयों से बचने का प्रयास किया गया है। मेरा पहला प्रस्ताव यह है कि राज्य का हस्तक्षेप और दायित्व न्यूनतम स्तर तक कम हो जाये। इससे कानून की कुल संख्या में 95 प्रतिषत तक की कमी हो जायेगी। कानूनों की संख्या कम होने से न्यायालय का बोझ कम होगा तथा उसकी गुणवत्ता बढ़ेगी। दूसरा प्रस्ताव यह है कि कलेक्टर, पुलिस अधीक्षक और जिला न्यायाधीष यदि महसूस करें कि उनके क्षेत्र में भय और आतंक के कारण न्याय में बाधा है तो वे अपने जिले में आपात्काल घोषित कर सकते हैं। आपात्काल घोषित जिले में पुलिस और न्यायालय की संपूर्ण कार्यवाही गुप्तचर पुलिस और गुप्तचर न्यायालय के पास होगी। इस प्रणाली से एक ओर व्यवस्था मजबूत होगी, दूसरी ओर राज्य को मुठभेड़ या आंतरिक सुरक्षा कानून जैसे कदमों का सहारा नहीं लेना पड़ेगा। आम लोगों में भी न्याय और व्यवस्था के प्रति विष्वास पैदा होगा।

2. पूरे भारत में यह एक गलत धारणा फैली हुई है कि न्याय सस्ता सर्वसुलभ होना चाहिए। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में मुकदमा लड़ने वालों में कुल संख्या 1 प्रतिषत से भी कम है। इनमें से तीन चौथाई लोग ऐसे है जिनके एक से अधिक मुकदमें न्यायालयों में लंबित है। आज सस्ता न्याय के नाम पर न्यायालय का खर्च राज्य उठाता है जिसके लिये उसे रोटी, कपड़ा, दवा आदि उपभोक्ता वस्तुओं तक पर टैक्स लगाना पड़ता है। मैं आज तक नहीं समझ सका कि इन 1 प्रतिषत मुकदमा लड़ने वालों को सस्ता न्याय दिलाने के लिये वे 99 प्रतिषत लोग टैक्स क्यों दें जो न्यायलय से कोई मतलब नहीं रखते? सस्ता न्याय का परिणाम ही है कि आम मुकदमें बाज लोगों से आम नागरिक इसलिये डरता है कि कहीं वह कोर्ट में खड़ा कर दे। सस्ता न्याय का नारा एक ऐसा षडयंत्र है कि पिछले साठ वर्षों में भले ही मुद्रा का मूल्य एक पैसे से भी कम रह गया हो, भले ही देष के अन्य सभी आधारों का मुद्रा के आधार पर पुर्नमूल्यांकन हुआ हो किन्तु दण्ड प्रक्रिया संहिता की अधिकांष धाराओं में अर्थ दण्ड 1940 में पच्चीस रूपये था तो आज भी वहीं पच्चीस रूपये है जबकि उसे बढ़कर 2000 दो हजार रूपये होना चाहिये था। मैंने यह संषोधन किया है कि न्यायालय का कोई भी व्यय भार राज्य वहन नहीं करेगा और न्यायालय अपने खर्च की व्यवस्था अपनी दण्ड व्यवस्था के ही आधार पर करेंगे।

3. प्राचीन काल की पंचायत प्रणाली सस्ती, पारदर्षी, त्वरित और विष्वसनीय थी। वर्तमान पंचायत प्रणाली को न्याय का दायित्व सौंपने से तो अनेक समस्याएं खड़ी हो सकती है क्योंकि वर्तमान समय में चरित्र का संकट है किन्तु पंचायत प्रणाली को न्याय में षामिल रखना भी उपयोगी होगा। इस हेतु मैंने प्रस्ताव किया है कि जो परिवार अपने विवाद ग्राम सभा में निपटाने हेतु सहमत नही होंगे वही परिवार न्यायलय में जायेंगे। चूॅकि परिवारों का सबसे अधिक संबंध ग्राम सभा या जिला सभा से ही होगा इसलिए आम तौर पर लोग ग्राम सभा को छोड़कर न्यायालयों में जाना कम पसंद करेंगे। इस तरह न्याय की दुहरी प्रणाली होगी और दोनों पक्षों पर निर्भर होगा कि वे किस प्रणाली का चयन करते हैं।

4. विधायिका की यह मजबूरी है कि वह चुनाव में मतदाता का विष्वास जीतने के लिये कठोर कानूनों से दूर रहे। भारत में Law According to Justice (न्याय के अनुरूप विधान) विधायिका का दायित्व है। विधायिका ने ऐसे अनेक कानून बनाये हैं जो न्याय में बाधा उत्पन्न करते हैं। छोटी मोटी मारपीट को धारा 323 में डालकर पुलिस हस्तक्षेप से दूर रखा गया जबकि आपसी सहमति से जुआ खेलना पुलिस हस्तक्षेप योग्य अपराध है। अवैध षस्त्र और अवैध अनाज रखने वालों में अवैध अनाज रखने को अधिक गम्भीर अपराध बनाया गया। न्याय प्रक्रिया में विधायिका के हस्तक्षेप को देखते हुए ही मैंने यह प्रस्ताव किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में संषोधन विधायिका उच्चतम न्यायलय के मुख्य न्यायधीष के परामर्ष से ही करेगी। इससे न्यायिक प्रक्रिया में राष्ट्रपति, मंत्रिमण्डल और न्यायालय तीनों संबद्ध होंगे।

कुछ संभावित प्रष्न

प्रष्न 1. पंचायती न्याय और कानूनी न्याय में अन्तर क्या होगा?

उत्तर– पंचायती न्याय में न्याय करने वाले पंचों का विवेक प्रमुख होता है और प्रणाली गौण। कानूनी न्याय में प्रक्रिया प्रमुख होती है और विवेक गौण। यदि किसी मामले में जज स्वयं सच्चाई को जानता हो तब भी उसे गवाहों और सबूतों के आधार पर निर्णय करना पड़ता है जबकि पंचायत में ऐसी मजबूरी नहीं। इसलिये पंचायत दोनों पक्षों की सहमति से ही कोई निर्णय करेगी किन्तु न्यायालय में कोई एक पक्ष भी जा सकता है।

प्रष्न 2–. पंचायत की न्याय प्रणाली क्या होगी?

उत्तर पंचायत की न्याय प्रणाली पंचायत तय करेगी। इस संबंध में सरकार के कोई कानून पंचायत की कार्य प्रणाली या सीमाएं तय नहीं कर सकेंगे। पंचायत में निपटारा किसी इकाई का इकाईगत मामला है जिसमें कोई अन्य इकाई हस्तक्षेप नहीं करेगी।

प्रष्न 3. न्याय निष्पक्ष हो इसका क्या उपाय हो सकता है?

उत्तर– आज भारत के आम नागरिक के चरित्र में गिरावट आई है। न्यायाधीष भी इसी समाज से आता है अतः उसमें भी चरित्र का अभाव स्वाभाविक है। समाज में चरित्र का स्तर उॅचा होना ही न्याय की निष्पक्षता का आधार होगा। फिर भी गुप्त मुकदमा प्रणाली से देष के प्रधान मंत्री से

लेकर प्रधान न्यायाधीष तक भयभीत रहेंगे। कलेक्टर, एस. पी. सिर्फ आपातकाल की परिस्थितियां ही घोषित कर सकते हैं। इसके बाद के तो उनके सब हस्तक्षेप षून्य होंगे और सब अधिकार गुप्तचर पुलिस और गुप्तचर न्यायिक सेवा के पास होंगे। संभव है कि किसी प्रधान मंत्री को ही सम्मानित करने के नाम पर थाने में बुलाकर उन्हें गुप्त न्यायिक सेवा द्वारा घोषित सजा सुनाकर, जेल सुपुर्द कर दिया जाय।

प्रष्न 4. आपके इस तरह के प्रयास से तो कोई भी राजनेता कभी भी जेल भेजा जा सकता है। इससे क्या राजनैतिक प्रतिषोध संभव नहीं है?

उत्तर – इस सम्पूर्ण प्रणाली में राजनेताओं या सरकार की कोई भूमिका या जानकारी तक का प्रावधान नही है। किस पुलिस ने क्या षिकायत की और किस न्यायिक गुप्तचर ने जांच की, यह किसी को पता नहीं चलेगा। आप हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में अपील कर सकते हैं जिसकी पृथक गुप्तचर सेवा पुनः पूरे प्रकरण की जांच कर सकती है।

प्रष्न 5. क्या यह तानाषाही नहीं?

उत्तर आम नागरिकों की कुषल व्यवस्था के लिये स्वराज्य की स्थापना आवष्यकता है और स्वराज्य की सुरक्षा के लिए अपराधियों के मन में कानून का डर भी अनिवार्य है। यदि स्वराज्य के लिये कुछ तानाषाही कानून भी बनाना पड़े तो बनाये जा सकते हैं। मुख्य बात तो यह है कि यह प्रावधान इतना अल्पकालिक होगा कि पंजाब, बिहार, कष्मीर, असम आदि में षायद दो चार माह के लिये लागू करना पड़े। मुझे तो विष्वास है कि उक्त प्रावधान लागू होते ही आतंक और बड़े बड़े अपराधी अपने आप ठीक हो जायेंगे। क्योंकि अपराध करके बच निकलने वाला प्रजातांत्रिक हथियार ही समाप्त हो जायेगा।

प्रष्न 6. न्याय महंगा करना कितना प्रजातांत्रिक होगा?

उत्तर मुकदमा लड़ने वालों को सस्ता न्याय दिलाने के लिये मुकदमा न लड़ने वालों पर कर लगाकर धन वसूलना जितना प्रजातांत्रिक होगा उससे अधिक प्रजातांत्रिक यह होगा कि न्याय में होने वाला खर्च दोषी व्यक्ति से दण्ड स्वरूप लिये जाये।

प्रष्न 7. आम अपराधी आज अपराध करने से डर नहीं रहा है। ऐसा क्यों?

उत्तर आम तौर पर एक सिद्धांत काम करता है कि किसी बीमारी के कीटाणुओं पर एक निष्चित मात्रा से कम दवा का उपयोग करने से उक्त कीटागुणाओं की सहन षक्ति में वृद्धि हो जाती है। उसी प्रकार अपराध नियंत्रण के लिये जितने मजबूत कदम उठने चाहिये थे उतने मजबूत कदम न उठने से अपराधियों की अपराध क्षमता बढ़ रही है। स्वतंत्रता के बाद के पचास वर्षों के अपराध और दण्ड का संतुलन इतना बिगड़ गया है कि बलात्कार के लिये अब मृत्यु दण्ड का प्रावधान करने की आवष्यकता महसूस हो रही है या मृत्यु दण्ड का भय भी हत्याओं को रोकने में विफल है। प्रष्न यह नहीं है कि सजा कितनी कठोर है बल्कि मुख्य प्रष्न यह है कि सजा कितने प्रतिषत अपराधियों को मिलती है। यदि भारत में हो रहे अपराध में सजा का प्रतिषत बढ़कर पांच भी स्थिर हो जाये, जो कि बहुत कम है, तो भी अपराधों में काफी कुछ रोक थाम संभव है।

प्रमुख बाधाएं

1. विधायिका, जो स्वयं अपराधियों के संरक्षण पर निर्भर है वह अपराध नियंत्रण के ठोस उपाय लागू नहीं होने देती। अनावष्यक या मामूली अपराधों को गम्भीर घोषित करके गम्भीर अपराधों को मामूली की श्रेणी में रखवाने में ये लोग पूरी तरह कुषल व सफल हैं। ?
2. अनेक समाज षास्त्री को स्वराज्य समाज के स्थान पर आदर्ष समाज की कल्पना को साकार करने में दिन रात लगे हैं, ये लोग हर कार्य के गुण दोष स्वयं तब करके वैसा ही सरकार से कानून बनवाने की जिद करते रहते हैं

मेरा यह विष्वास है कि यदि न्यायिक प्रक्रिया को आदर्ष बनाने की जिद को छोड़कर व्यावहारिक बनाने की पहल की जाये, तो समाज स्वयं में आदर्ष हो सकता है।

कर की प्रणाली और आर्थिक असमानता

समाज में जब से राज्य व्यवस्था प्रारम्भ हुई तभी से कर प्रणाली का भी प्रादुर्भाव हुआ। राज्य का दायित्व था कि वह प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी दे। उक्त गारंटी की व्यवस्था के लिए राज्य को जिस धन की आवष्यकता होती थी वह नागरिकों से लेने के तरीके को ही कर (टैक्स) कहा जाता है।

यदि किसी सुविधा के लाभ लेने वाले व्यक्ति उक्त सुविधा के बदले में कुछ निष्चित मूल्य देते हैं तो उसे हम फीस कहते हैं किन्तु यदि वह धन किसी सुविधा विषेष के लिए न हो तथा सब पर आरोपित हो चाहे वह लाभ ले या नहीं तो उसे कर कहा जाता है।

राज्य प्रत्येक नागरिक के जीवन, अभिव्यक्ति और स्वनिर्णय की स्वतंत्रता की सुरक्षा करता है अतः उसे प्रत्येक नागरिक से कर लेने का अधिकार है। साथ ही राज्य प्रत्येक नागरिक की संपत्ति की सुरक्षा की व्यवस्था करता है और संपत्ति समान होती है अतः राज्य के लिए यह उचित है कि वह सबसे समान कर लेने की अपेक्षा संपत्ति के अनुसार कर लेने की व्यवस्था करे। इसी लिए प्राचीन समय में किसी भी व्यक्ति द्वारा भूमि से पैदा की गई उपज का कुछ हिस्सा ही राज्य का एक मात्र कर होता था। कालान्तर में और मुख्य रूप से गुलामी काल से भारत में कल्याणकारी राज्य आदर्ष बना। अब राज्य सुरक्षा तक सीमित न रहकर इकाईयों के इकाईगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने लगा और तब राज्य की बढ़ी हुई आवष्यकताओं के अनुसार कर के ढांचे का भी विस्तार हुआ। जनकल्याणकारी राज्य की कर प्रणाली के तीन आदर्ष होते हैं–

1. प्रत्येक नागरिक से समान रूप से कर लिया जाए और आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग को सुविधाएं दी जायें।
2. आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न लोगों से कर लिया जाय और सबको समान रूप से सुविधा दी जाय।
3. सम्पन्न लोगों से कर लिया जाय और गरीब लोगों को सुविधाएँ दी जायें। पहले और दूसरे तरीके में भ्रष्टाचार और अन्याय के कम अवसर होते हैं, क्योंकि या तो टैक्स लेने में या वितरण करने में गरीब अमीर की पहचान करनी होती है जबकि तीसरे विकल्प में टैक्स लेने और सुविधा देने, दोनों में गरीब अमीर की पहचान आवष्यक होती है। दुर्भाग्य से भारत ने तीसरे विकल्प का चयन किया है जिसके अनुसार संपन्न लोगों से ही कर लिया जाएगा और कमजोर लोगों को ही सुविधाएं दी जायेंगी। दूसरे षब्दों में कहें तो गरीब वर्ग को कर मुक्त रखने और संपन्न वर्ग की सुविधा वंचित रखने की अति उच्च आदर्षवादी प्रक्रिया षुरू की गई है। इस आदर्षवादी सिद्धांत के अनुसार मानव उपयोगी वस्तुओं की एक सूची उपयोगिता की प्राथमिकताओं के क्रम के आधार पर बननी चाहिए थी और उस सूची के अनुसार नीचे की वस्तुओं पर तब तक कर लगाना था कि जब तक कर की आवष्यकता षून्य न हो जाए। दूसरी ओर उक्त सूची में उपर तब तक सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए थीं जब तक सुविधाओं की मात्रा षून्य न हो जाये। भारत में भी ऐसी सूची बनी जिससे रोटी पहले क्रम पर, उसके बाद कपड़ा फिर मकान और दवा उसके बाद आवागमन को रखा गया। अन्य अनेक वस्तुओं को और नीचे अंकित किया गया। सिद्धांत के अनुसार रोटी, कपड़ा और मकान दवा को पूर्णतः कर मुक्त होना चाहिए था और इन सब पर सुविधाएं मिलनी चाहिए थीं किन्तु राज्य की नीयत साफ नहीं थी। अतः राज्य ने कर लगाते समय ही चालाकी की और रोटी, कपड़ा, मकान, दवा जैसी प्राथमिकता के क्रम में उपर वाली वस्तुओं पर कर लगा दिया और बिजली, मिट्टी तेल पोस्टकार्ड, कागज, अखबार और रसोई गैस जैसी पांचवी छटवीं या दसवीं क्रम की वस्तुओं पर छूट देनी षुरू कर दी। यहां तक कि घास, भूसा, ईंटा, कपड़ा, फल और सब्जियॉ भी कर के दायरे में षामिल हो गई। पूर्णतः मानव श्रम पर निर्भर साइकिल भी कर से अलग नहीं बची। हद तो तब हो गई जब षत प्रतिषत श्रम निर्भर उत्पादन बीड़ीपत्ती, सालबीज, पत्तल आदि पर भी भारी कर लगा दिये गये। पर्यावरण के लिए वृक्षारोपण को प्रोत्साहन देने का नाटक करने वाली सरकार ने अपने खेत में अपने श्रम से उत्पादित बांस लकड़ी आदि में से भी कुल उत्पादन का एक चौथाई से एक तिहाई तक कर के रूप में लेने का नियम बना दिया। जब सुविधा देने की बारी आई तो पोस्टकार्ड, समाचारपत्र, कागज, रसोई गैस कैरोसिन, बिजली, आदि पर छूट प्रदान कर

दी। एक कहावत के अनुसार एक राजा ने धूर्त अफसर को हुक्म किया कि लोगों को सब्जी बनाने के लिए बराबर बराबर मात्रा में लौकी और किषमिष प्रदान करें और देखे कि कौन स्वादिष्ट सब्जी बनाता है। अफसर ने अपने को किषमिष और लौकी तौल कर बराबर दे दी और विरोधी को गिनकर बराबर दी। षिकायत होने पर उसने कहा कि उसने तो दोनों को बराबर दी है। विपक्षी को एक लौकी और एक किषमिष तथा समर्थक को एक एक किलो। यही हाल कर प्रणाली का भी हुआ। रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, साइकिल और पषुचारा पर कर लगाया गया और पोस्टकार्ड, अखबार, कागज, मिट्टी तेल आदि पर छूट दी गई। आम आदमी समझ सकता है कि गरीब आदमी कितना रोटी, कपड़ा, मकान, दवा का उपयोग करता है और कितना पोस्टकार्ड, रसोई गैस, बिजली या समाचार पत्रों का। एक सर्वेक्षण के आंकड़े स्थिति को और स्पष्ट कर सकते हैं–

सम्पूर्ण आबादी को चार भागों में विभाजित किया गया है।

1. निर्धन	**5 प्रतिषत**
2. सामान्य	**45 प्रतिषत**
3. सम्पन्न	**45 प्रतिषत**
4. धनाढ्य	**5 प्रतिषत**

आय का अनुपात

लोग	श्रम प्रधान	कृत्रिम उर्जाप्रधान
1. निर्धन 05 %	**10 %**	**0 %**
2. सामान्य 45 %	**65 %**	**35 %**
3. सम्पन्न 45 %	**35 %**	**65 %**
4. धनाढ्य 5 %	**0 %**	**100 %**

इस तालिका से स्पष्ट है कि क्रम से गरीब व्यक्ति की सम्पूर्ण आय के स्त्रोत श्रम पर निर्भर करते हैं और धनाढ्य के कृत्रिम उर्जा पर। इसी तरह व्यय का सर्वेक्षण करें तो बिल्कुल उल्टी स्थिति है।

व्यय का अनुपात

	श्रम प्रधान उपभोक्ता वस्तु	कृत्रिम उर्जा प्रधान उपभोक्ता वस्तु
1. निर्धन 05 %	**100 %**	**0 %**
2. सामान्य 45 %	**75 %**	**25 %**
3. सम्पन्न 45 %	**25 %**	**75 %**
4. धनाढ्य 05 %	**0 %**	**100 %**

स्पष्ट है कि निर्धन व्यक्ति की सम्पूर्ण आय श्रम–निर्भर है और व्यय भी दूसरी ओर धनाढ्य व्यक्ति की इसके ठीक विपरीत सम्पूर्ण आय और व्यय कृत्रिम उर्जा निर्भर है। यदि कृत्रिम उर्जा का मूल्य ढाई गुना करके रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, साईकिल रिक्सा, घास, भूसा ईंटा, कपड़ा लकड़ी, बास आदि हजारों वस्तुओं को टैक्स फ्री कर लिया जाय तो निर्धन की आय बढ़ेगी, व्यय घटेगा। धनाढ्य की आय घटेगी, व्यय बढ़ेगा। भारत की संपूर्ण आर्थिक अव्यवस्था का सिर्फ एक ही कारण है कि भारत में श्रम के स्थान पर कृत्रिम उर्जा को महत्व दिया गया। आष्चर्य होता है कि भारत एक श्रम बहुल एवं कृत्रिम उर्जा अभाव का देष है। दूसरी और पष्चिम के राष्ट्र श्रम अभाव कृत्रिम उर्जा बहुल देष है। कृत्रिम उर्जा को सस्ती करना उनका षौक नहीं बल्कि मजबूरी है किन्तु भारत ने या तो उनकी नकल की या बुद्धिजीवियों तथा पूँजीपतियों ने नकल का षड़यंत्र किया और कृत्रिम उर्जा को प्रमुख मान लिया। भारत में विदेषों से डीजल, पेट्रोल आता है, विदेषी कर्ज बढ़ाता है, पर्यावरण प्रदूषित करता है, श्रम का षोषण करता है। परन्तु भारतीय नीति निर्धारक इसे प्रगति का मापदण्ड मानकर प्रसन्न हो रहे हैं। यदि किसी कुत्ते को विष्वास करा दिया जाय कि सूखी हड्डी चबाने से एक मीठा मीठा स्वाद आता है तो कुत्ता अपने ही निकले खून के स्वाद से बहुत प्रसन्न होगा। वही स्थिति आज हमारी है। प्रचार तंत्र ने ऐसा दुष्प्रचार किया है कि कृत्रिम उर्जा हमें षोषक की अपेक्षा सहायक महसूस हो रही है।

स्वराज्य व्यवस्था में समाज मालिक होता है और राज्य की भूमिका एक निगम के रूप में होती है। जिस तरह से रेल निगम रेल का, संचार निगम टेलीफोन का तथा स्वास्थ्य निगम अस्पतालों की व्यवस्था करते हैं, उसी तरह सुरक्षा निगम समाज में सभी प्रकार की सुरक्षा का दायित्व संभालता है, और इसी को हम राज्य कहते हैं। राज्य भी अन्य निगमों के समान ही सुरक्षा फीस लेता है किन्तु इस सुरक्षा फीस को हम फीस न कहकर टैक्स या कर कहते हैं। राज्य व्यक्ति को चार प्रकार के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देता है

1. जीने की
2. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की
3. स्वनिर्णय की
4. संपत्ति की।

इनमें से प्रथम तीन की सुरक्षा पर तो कोई कर लगाना संभव नहीं। सिर्फ संपत्ति की सुरक्षा हेतु ही कर लगाना संभव है। अतः मेरे विचार में राज्य के लिए सर्वाधिक न्यायोचित टैक्स, संपत्ति कर ही हो सकता है। चूंकि संपत्ति की मात्रा प्रत्येक परिवार में असमान होती है अतः संपत्ति की सुरक्षा में राज्य की षक्ति और साधनों का व्यय भी असमान होता है। यदि संपत्ति पर कर लगा दिया जाय तो आम तौर पर उसकी सुरक्षा और उसके कर में समान अनुपात हो सकता है। संपत्ति कर के अतिरिक्त अन्य कोई कर ऐसा नहीं है जो संपत्ति कर के समान न्याय संगत हो। दूसरी यह बात भी है कि संपत्ति कर का संग्रह भी अन्य किसी भी कर की अपेक्षा अधिक सुविधा जनक है। वर्तमान में बिक्री कर, आयकर तथा अन्य अनेक प्रकार के जो कर–प्रावधान हैं वे सब के सब न्यायोचित नहीं हैं और संग्रह प्रक्रिया भी जटिल है।

आय के तीन स्त्रोत माने जाते हैं– 1. श्रम 2. बुद्धि 3. धन संपत्ति। श्रम की उत्पादन क्षमता सीमित और कम होती है। बुद्धि की उत्पादन क्षमता सीमित और अधिक होती है। किन्तु धन की उत्पादन क्षमता असीमित भी होती है और अधिक भी। बुद्धि और धन आपस में इक्टठे हो जाये तो व्यक्ति अपार संपत्ति के धारक हो जाते हैं। पूँजीवादी देषों में धन और श्रम की उत्पादन क्षमता में बहुत कम अन्तर है। किसी भी पूंजीवादी देष में न्यूनतम श्रम मूल्य चालीस से पचास किलो अनाज ही है जबकि रूपये की उत्पादन क्षमता उसकी मात्रा का तीन से चार प्रतिषत तक। भारत में श्रम का मूल्य तो सिर्फ चार से आठ किलो अनाज ही है जबकि रूपये की उत्पादन क्षमता करीब 12 से 15 प्र0 ष0 तक। इसलिए विदेषों के लोग श्रम का सम्मान करते हैं और दूसरे का श्रम क्रय करने की अपेक्षा स्वयं श्रम करना अच्छा मानते हैं। भारत में इससे ठीक विपरीत अपने श्रम की अपेक्षा दूसरों का श्रम क्रय करना सुविधा और सम्मानजनक मानते हैं। विदेषों में बुद्धि का भी भारत से अधिक सम्मान है। अतः भारत की बुद्धि का पलायन का क्रम निरंतर जारी है। धन की उत्पादन क्षमता और श्रम की उत्पादन क्षमता के बीच का यह अन्तर ही आर्थिक असमानता का कारण है। जब धन बिना श्रम और बुद्धि की सहायता के भी पंद्रह प्रतिषत की तीव्र गति से प्रतिवर्ष बढ़ता है तो श्रम उसके समक्ष कैसे टिक सकता है। पिछले पचास साल के स्वतंत्रता के काल खंड में भी न तो धन की उत्पादन क्षमता में कमी हुई और न ही श्रम की उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। श्रम का न्यूनतम

मूल्य सन सैतालीस में यदि तीन किलो अनाज था तो आज बढ़कर चार किलो प्रति दिन हुआ होगा किन्तु यदि सन सैतालीस में किसी के पास एक सौ रूपया था तो वह आज 15 प्रतिषत वार्षिक के आधार पर ही बढ़कर एक लाख हो गया। यदि मुद्रा स्फीति को घटा भी दे तो भी वह एक सौ से बढ़कर ढ़ाई हजार तो हो ही गया। आज भारत की एक ही सबसे बड़ी समस्या है आर्थिक असमानता। श्रम प्रधान या गरीब व्यक्ति की प्रगति की कछुए की चाल है और धन संपत्ति वाले की हवाई जहाज की। दोनों के बीच कोई तुलना ही नहीं है। अतः भारत में न्यायपूर्ण अर्थ व्यवस्था की स्थापना के लिए आर्थिक असमानता पर चोट करनी होगी और इस असमानता पर चोट करने के लिए श्रम मूल्य वृद्धि और धन की उत्पादन क्षमता को कम करना होगा। कृत्रिम उर्जा पर भारी कर और सम्पत्ति कर इन दोनों उद्देष्यों की पूर्ति में सहायक होंगे।

भारत की संपूर्ण व्यवस्था पूँजीपतियों के इषारे पर संचालित हो रही है। भारत की प्रमुख समस्या है आर्थिक असमानता किन्तु भारत के आम नागरिक को मंहगाई, बेरोजगारी और मुद्रा स्फीति जैसे भ्रममूलक या काल्पनिक समस्याओं के भ्रम में डाल दिया गया है। जिस तरह भारत का हर आदमी भूत से परेषान रहता है वैसे ही वह मंहगाई से भी है जबकि न तो भूत का कोई अस्तित्व है न ही मंहगाई का। आज तक कोई विद्वान मंहगाई की परिभाषा ही नहीं कर सका है। मंहगाई का अर्थ मुद्रा स्फीति है जिसका अर्थ है नगद रूपये का मूल्य हास। नगद रूपये के मूल्य हास का कोई असर गरीबों पर कभी नहीं होता। अतः पता नहीं मुद्रा स्फीति से गरीब क्यों परेषान है? ऐसा भ्रम भारत के आम नागरिकों में फैलाया गया है। मेरे विचार में मुद्रा स्फीति का भय फैलाने में पूंजीपतियों, राजनेताओं तथा मीडिया की मिली जुली साजिष है। कल्पना कीजिए किसी दिन एकाएक नगद रूपये का मूल्य षून्य कर दिया जाए तो मैं नहीं समझता की धन हीन व्यक्ति को इससे क्या परेषानी होगी। यदि मंहगाई का अर्थ आम नागरिक की क्रय षक्ति से जोड़ा जाए तो भारत के प्रत्येक व्यक्ति की क्रय षक्ति में 10 या 20 प्रतिषत की वृद्धि हुई है तथा अमीर की क्रय षक्ति में 1000 या 100000 प्रतिषत। यह अंतर मंहगाई नहीं कहा जा सकता बल्कि आर्थिक असमानता कहा जाना चाहिए। यदि मंहगाई का अर्थ वस्तुओं की मूल्य वृद्धि से जोड़ा जाए तो सच्चाई यह है कि मुद्रा स्फीति को निकालने के बाद भारत में पिछले पचास वर्षों में सोना, चांदी और जमीन के मूल्य बढ़े हैं जबकि अनाज, कपड़ा, मकान के समान के मूल्य घटे हैं। डीजल, बिजली, मिट्टी तेल आदि भी लगातार सस्ते हुए हैं। घड़ी, रेडियो, पेन आदि तो बहुत सस्ते हुए हैं। जब तीन वस्तुओं के मूल्य बढ़े हैं और वे तीनों ही गरीबों के उपयोग की नही हैं तो मंहगाई का अर्थ क्या है और असर क्या? यह समझ में नहीं आया। मैंने मंहगाई और मुद्रा स्फीति पर दस वर्षों तक षोध करके यह निष्कर्ष निकाला है कि राजनेता, अपने सत्ता के खेल में, सरकारी कर्मचारी अधिक से अधिक वेतन वृद्धि के उद्देष्य में तथा पूँजीपति आम लोगों का ध्यान आर्थिक असमानता पर से हटाने के लिए मंहगाई का रोना रोते हैं अन्यथा न तो कोई परिभाषा ही बन सकी है न ही इसका कोई अस्तित्व ही है।

मंहगाई के समान ही बेरोजगारी षब्द शी श्रमक है। मंहगाई षब्द राजनेताओं और पूँजीपतियों ने आर्थिक असमानता पर से ध्यान हटाने के उद्देष्य से बनाया दूसरी और षिक्षित बेरोजगार षब्द बुद्धिजीवियों ने श्रम को धोखा देने के लिए बनाया। बेरोजगारी की परिभाषा बदल दी गई जिसके दुष्परिणाम हुए कि रोजगार के सारे प्रयत्नों का लाभ भी बुद्धिजीवियों के हाथों केन्द्रित हो गया। भारत की वर्तमान अर्थ नीति ने मंहगाई और षिक्षित बेरोजगारी का एक काल्पनिक भूत खड़ा करके कर लगाने और सब्सीडी देने के ऐसे–ऐसे तर्क बना लिए जो आर्थिक असमानता में वृद्धि करने में लगातार सहायक हो रहे हैं।

मैंने नई अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए प्रस्तावित संविधान में कुछ मौलिक फेर बदल किये हैं।

1. भारत के प्रत्येक नागरिक की संपूर्ण चल अचल संपति पर अधिकतम दो प्रतिषत वार्षिक तक का एक मात्र कर।
2. श्रम मूल्य वृद्धि के उद्देष्य से कृत्रिम उर्जा के मूल्य में अपेक्षित वृद्धि।
3. आर्थिक असमानता अधिक होने पर आर्थिक आपातकाल की घोषणा। आपातकाल में संपूर्ण चल अचल संपति पर 2 प्रतिषत आपातकर।
4. षासन का व्यय सिर्फ आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा पर। व्यय करने के बाद षेष बची संपूर्ण राषि का प्रत्येक नागरिक में समान वितरण।
5. सभी प्रकार के टैक्स और सब्सीडी समाप्त।

इस व्यवस्था से आर्थिक असमानता अपने आप कम हो जाएगी क्योंकि संपत्ति पर कर लगेगा और व्यक्ति को छूट मिलेगी। श्रम की मांग और मूल्य बढ़ जायेगा। साथ ही कर की जटिलताएं भी खत्म हो जावेंगी।

प्रष्न 1.—आप 2 प्रतिषत संपत्तिकर लगाकर सरकार के सब खर्च कैसे पूरे करने की योजना रखते हैं?

उत्तर भारत की संपूर्ण चल अचल संपति पर 2 प्रतिषत कर तो बहुत अधिक धन इकट्ठा करेगा। मैं तो समझता हूँ कि एक डेढ़ प्रतिषत ही पर्याप्त है। मंदिर और धर्मषाला, स्कूल कालेज, कल कारखाने रेल, सिंचाई बाँध, व्यक्तिगत और सार्वजनिक मिल्कियत में अन्य साधन आदि को जोड़कर देखें तो कुल टैक्स बहुत हो जायेगा। एक मोटे अनुमान के अनुसार कुल आय संपति कर से सैंतीस खरब तक, कृत्रिम उर्जा पर ढ़ाई गुना मूल्य वृद्धि में दस खरब रूपया टैक्स मिलेगा। कुछ व्यय सेना पर दो अरब पुलिस पर एक खरब, सब्सीडी प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष दो हजार की दर से बीस खरब अन्य व्यय एक खरब तथा व्याज आदि पटाने में खर्च करके भी काफी बच सकता है।

प्रष्न 2.— मन्दिर और धर्मषाला पर टैक्स लगाना कितना उचित है?

उत्तर आप बताइये कि इसमें क्या गलत है। यदि मंदिर और धर्मषाला का उपयोग कुछ लोग करते हैं और कुछ नही ंतो उपयोग न करने वाले क्यों टैक्स दें। फिर भी यदि सब लोग चाहते हैं कि वह टैक्स फ्री रहे तो वे चन्दा करके दें दें। आखिर दो ही तो मार्ग है

1. इन पर टैक्स छूट देकर अन्य लोगों पर टैक्स की दर बढ़ाई जाय।
2. सब्सीडी घटाई जाय। मैं समझता हूँ कि मंदिर धर्मषाला पर टैक्स लगाकर उक्तकर का समान वितरण अधिक अच्छा होगा क्योंकि धार्मिक संपत्ति पूंजीपतियों का सुरक्षा कवच है।

प्रष्न 3.— रेल संपत्ति और बांधों पर कर लगने का बोझ तो आम आदमी पर ही पड़ेगा।

उत्तर यात्रा करने वाले और बांध से सिंचाई करने वालों पर टैक्स बढ़ेगा। यदि ये आम आदमी है तब भी कोई हर्ज नहीं क्योंकि यह धन कहीं जा नहीं रहा है बल्कि सबमें बराबर बटने वाला है। किन्तु मैं जानता हूँ कि पूंजीपतियों और बुद्धिजीवियों के आम आदमी षब्द का क्या अर्थ होता है। मैंने सर्वेक्षण के बाद पाया कि 5 प्रतिषत नीचे वाले और 5 प्रतिषत धनाढ्य के बीच आवागमन व्यय में असंख्य गुने का अन्तर है। 5 प्रतिषत नीचे वाले नगण्य यात्रा करते हैं या साइकिल पर चलते हैं। मैं नहीं समझता कि आपके आम आदमी में ये षामिल हैं कि नहीं? साइकिल पर टैक्स लगाने से आम आदमी पर बोझ नहीं पड़ता और बस या रेल भाड़ा बढ़ने से आम आदमी पर बोझ पड़ेगा यह गलत नीति मालूम पड़ती है।

प्रष्न 4. संपति का मूल्यांकन कैसे होगा। लोग छिपा लेंगे?

उत्तर वर्तमान कर प्रणाली में छिपाने के जितने मार्ग हैं उतने इस प्रणाली में नहीं है। संपूर्ण घोषित संपत्ति पर कुल कर 2 प्रतिषत मात्र है। यह कर प्रतिवर्ष है अतः एक बार छिपाने से काम नहीं चल सकता। भारत के प्रत्येक नागरिक की संपत्ति घोषित होने से छिपाना और कठिन है। संपत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त करके कुल संपत्ति पारिवारिक स्वामित्व का होने से भी छिपाना कठिन होगा। फिर एक बंधन यह भी है कि घोषित संपत्ति से 25 प्रतिषत अधिक मूल्य देकर किसी भी व्यक्ति की संपूर्ण संपत्ति को षासकीय संपत्ति कभी भी घोषित किया जा सकता है।

प्रष्न 5. इस तरह सम्पूर्ण संपत्ति कभी भी षासन ले ले यह अन्यायपूर्ण है?

उत्तर न्याय अन्याय की परिभाषा सब मिलाकर तय करेंगे न कि सिर्फ संपत्ति वाले। समाज की तय षर्तों पर ही आपको न्याय और सुरक्षा की गारंटी मिल सकती है अन्यथा नहीं। जो लोग संपत्ति पर टैक्स देने के मामले में रोड़े खड़े करेंगे उनकी सुरक्षा समाज क्यों करेगा? मुझे विष्वास है कि आम लोग इससे सहमत होंगे।

प्रष्न 6. रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, साइकिल आदि पर टैक्स लगे यह तो उचित है किन्तु बिजली, डीजल, मिट्टी तेल, पोस्टकार्ड की मूल्य वृद्धि ठीक नहीं?

उत्तर मुझे कृत्रिम उर्जा पर कर लगाने का षौक नहीं। मैं तो तीन बातें चाहता हूँ।

1. आर्थिक असमानता पर नियंत्रण हो।
2. श्रम मूल्य बढ़े।
3. प्राथमिक उपभोक्ता वस्तुएं कर मुक्त हों।

इस संबंध में आपके द्वारा सुझाई गई प्रणाली के दुष्परिणाम दिख रहे हैं। अब मेरे द्वारा सुझाई गई प्रणाली का उपयोग करिये तब परिणाम स्पष्ट होगा। यदि आपके पास इन समस्याओं का कोई और समाधान हो तो लिखिए। मैं विचार करूँगा अन्यथा पूरे देष में या किसी सीमित क्षेत्र में प्रयोग करके देखिए तब परिणाम स्पष्ट होंगे। मेरे सुझावों से तथाकथित पूंजीपति या बुद्धिजीवी जो बोलचाल की भाषा में आम आदमी है उनके पास प्रष्नों की तो लम्बी कतार है किन्तु सुझाव नहीं है। मैं आपसे अपेक्षा करता हूँ कि आप अपने प्रष्न और सुझाव भेजेंगे।

प्रजातंत्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि इसमें नीचे से नीचे और उँचे से उँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिले।

– महात्मा गांधी

समाज में श्रम का स्थान

व्यक्ति की आय के तीन साधन होते हैं–

1. श्रम
2. बुद्धि
3. धन

श्रम की षक्ति कम होती है, सीमित होती है तथा प्राकृतिक है। उसे बढ़ाने की सीमित संभावनाएं हैं। बुद्धि की षक्ति अधिक होती है तथा उसकी सीमाएं श्रम से बहुत अधिक बड़ी होती हैं। धन की षक्ति असीम होती है। धन स्वयं में आय का एक स्वतंत्र श्रोत होता है। अनेक पष्चिमी देषों में श्रम का मूल्य पचास किलो अनाज है, जबकि भारत के हरियाणा पंजाब आदि विकसित क्षेत्रों में आठ किलो तथा उड़ीसा, बिहार के कुछ क्षेत्र तथा सरगुजा जैसे अविकसित क्षेत्रों में ढाई से तीन किलो अनाज प्रतिदिन। इस 2.1/2 से 3 किलो अनाज पर भी वर्ष भर काम नहीं मिलता। इस तरह भारत में श्रम की उत्पादन क्षमता बहुत कम है। अमेरिका और ब्रिटेन के अनेक बड़े लोग अपना घरेलू काम स्वयं करते हैं जबकि भारत में छोटे से छोटा काम भी नौकर से कराने की आदत है क्योंकि विदेषों में श्रम का बहुत अधिक सम्मान है तथा भारत में श्रम बहुत सस्ता। इस तरह दुनिया के अन्य देषों की तुलना में भारत में श्रम का, मूल्य महत्व तथा उत्पादन क्षमता बहुत कम है।

दूसरी ओर दुनिया के अन्य देषों की अपेक्षा भारत में धन की उत्पादन क्षमता बहुत अधिक है। अमेरिका, ब्रिटेन, आदि में धन की उत्पादन क्षमता तीन से छः प्रतिषत तक है जबकि भारत में धन की उत्पादन क्षमता बारह से पंद्रह प्रतिषत तक है।

किसी भी देष की सुख समृद्धि तथा सम्पन्नता का आधार है उस देष का न्यूनतम श्रम मूल्य। दुनिया के किसी भी विकसित राष्ट्र में न्यूनतम श्रम मूल्य चालीस पचास किलो अनाज प्रतिदिन से कम नहीं। दूसरी ओर गरीब राष्ट्रों का चार से आठ किलो तक होता है। इन गरीब राष्ट्रों में भी जो इलाका गरीब या पिछड़ा माना जाता है वहां का श्रम मूल्य दो तीन किलो अनाज ही होता है। श्रम प्रगति की मूल इकाई है। पष्चिम के राष्ट्र श्रम मूल्य की दृष्टि से सम्पन्न होने से वहां की प्रगति का मापदण्ड श्रम मूल्य नहीं है किन्तु भारत की निर्धन स्थिति को देखते हुए प्रगति का मूल्यांकन श्रम मूल्य के आधार पर ही होना चाहिये था। दुर्भाग्य है कि पिछले अनेक वर्षों से तो हम आंतरिक आवागमन तथा लोहा सीमेन्ट के उपयोग को अपनी व्यक्तिगत प्रगति का आधार मानते रहे जबकि अब तो ऐसा लगता है कि भारत की प्रगति का मूल्यांकन न श्रम मूल्य से होगा, न ही उपभोक्ता सामग्री की प्रचुरता से बल्कि अब तो भारत की प्रगति एटम या हाइड्रोजन बमों की षक्ति और संख्या से आकंलित की जायेगी।

श्रम रोजगार के आकलन की पहली इकाई है तथा बुद्धि दूसरी। पष्चिम के धनाढ्य देष श्रम अभाव देष हैं, अतः वहॉ श्रम का रोजगार से कोई सम्बन्ध नहीं। यही कारण है कि विकसित देष बेरोजगारी का आंकलन और समाधान करने में बुद्धि को मापदण्ड मानते हैं। उनकी परिभाषा अनुसार योग्यतानुसार काम और तदनुसार वेतन न मिलना ही बेरोजगार है। भारत अब तक श्रम आधारित बेरोजगारी ही नहीं दूर कर सका है। फिर उसे विकसित राष्ट्रों की इस परिभाषा को आधार क्यों बनाना चाहिये? जिन देषों की आय का औसत बुद्धि पर आश्रित है वे चाहे जैसी योजना और परिभाषा बनावें किन्तु हम तो श्रम से उपर उठे ही नहीं है। हमें बेरोजगारी की अपनी स्वदेषी परिभाषा बनानी चाहिये अर्थात् न्यूनतम घोषित श्रम मूल्य पर योग्यतानुसार काम की उपलब्धता। इस परिभाषा के माध्यम से श्रम और रोजगार एक साथ जुड़ कर बेरोजगारी का मानवीय हल निकाल सकेंगे अन्यथा पष्चिम की परिभाषा के आधार पर हम श्रम के साथ अन्याय भी करते रहेंगे और बेरोजगारी भी दूर नहीं होगी। मुझे आष्चर्य है कि भारत में षिक्षित व्यक्ति भी बेरोजगार होता है जबकि मान्यता अनुसार षिक्षित व्यक्ति श्रम प्रधान की अपेक्षा बहुत अधिक सुविधा जनक स्थिति में है। श्रम प्रधान व्यक्ति रोजगार हेतु सिर्फ श्रम पर निर्भर है। जिसकी षक्ति और क्षमता सीमित तथा एकांगी है जबकि षिक्षित व्यक्ति आय के लिये श्रम के साथ साथ बुद्धि का भी उपयोग कर सकता है। मुझे तो लगता है कि षिक्षित बेरोजगार षब्द स्वयं में ही श्रम जीवियों के विरूद्ध बुद्धिजीवियों का षड़यंत्र है जो श्रम को रोजगार के साथ सीधा जुड़ने में बाधक है। पता नहीं कि किस तरह हमारे सामाजिक चिंतक देष के अनेक भागों में पन्द्रह और बीस रूपये मिल रही मजदूरी को उतनी बड़ी बेरोजगारी नहीं मानते जितनी एक सौ रूपया प्रतिदिन वाले षिक्षक, दो सौ रूपया डाक्टर या सब इन्जीनियर की बेरोजगारी को मानते हैं। जब भी मैं बेरोजगारी के साथ षिक्षित षब्द जुड़ा देखता हूँ तो मुझे कष्ट होता है। बेरोजगारी की ऐसी परिभाषा पर तथा मैं सोचता हूँ कि मुझे श्रम के संगठित षड़यंत्र के खिलाफ कुछ करना चाहिये।

श्रम तथा श्रमजीवियों को भ्रम में डालने के लिये एक और सुविधा है। श्रम मूल्य का आंकलन उसके एक दिन के श्रम के लिये मिलने वाली वस्तुओं की मात्रा के आधार पर होना चाहिये था न कि धन के आधार पर। मान लें कि सन् 81 के आधार पर श्रम मूल्य में तीन गुनी की वृद्धि हुई किन्तु मुद्रा स्फीति के आधार पर रूपये का मूल्य साढ़े तीन गुना कम हो गया तो वास्तव में श्रम मूल्य घटा है जबकि व्यवस्था के आंकलन के अनुसार श्रम मूल्य बढ़ा है। यदि सन् 81 में एक दिन के श्रम के लिए हमारे क्षेत्र में ढाई से तीन किलो अनाज मिलता था तो आज भी उसे उतना ही मिलता है। फिर बेरोजगारी दूर करने और प्रतिवर्ष श्रम मूल्य बढ़ाने की घोषणा का क्या अर्थ है? यदि मुद्रा स्फीति के आधार पर श्रम मूल्य में संषोधन होता है तो वह श्रम मूल्य वृद्धि नहीं मानी जा सकती क्योंकि रूपया स्वयं में स्थिर न होने से वह मूल्य वृद्धि तो संषोधित मूल्यांकन मात्र होती है। अतः श्रम मूल्य का आंकलन भी प्रचलित रूपये के आधार पर करना भ्रम उत्पन्न करता है।

भारत में श्रम की वास्तविक दुर्दषा को दुनिया की नजरों से छिपाने के लिये एक और तकनीक का सहारा लिया जाता है और वह है कृत्रिम श्रम मूल्य। इस प्रणाली में कुछ संगठित गिरोह सरकार की मिली भगत या दबाव डालकर वास्तविक श्रम मूल्य से हटकर एक कृत्रिम श्रम मूल्य घोषित

करवा लेते हैं जो वास्तविक श्रम मूल्य से बहुत अधिक होता है। यह श्रम मूल्य सरकारी कार्य या अन्य संगठित समूहों द्वारा दिया जाता है किन्तु षेष पूरे देष का श्रम मूल्य इस बढ़े मूल्य से प्रभावित नहीं होता। इसके परिणाम स्वरूप पूरी दुनिया अथवा समाज षास्त्रियों का मुंह बन्द हो जाता है तथा वास्तविक श्रम मूल्य पर्दे के पीछे ढॅक जाता है। वर्तमान समय में हमारे सरगुजा जिले का वास्तविक श्रम मूल्य सिर्फ बीस से तीस रूपये प्रतिदिन है जबकि कृत्रिम श्रम मूल्य पचास रूपये प्रतिदिन के आस पास है। न्यूनतम श्रम मूल्य घोषित करने का तो यही अर्थ है कि उक्त श्रम मूल्य पर सरकार रोजगार देने हेतु बाध्य है किन्तु यदि सरकार इतना रोजगार दे नहीं सकती तो श्रम मूल्य में नकली वृद्धि श्रम मूल्य वृद्धि में घातक प्रभाव पैदा करती है।

बुद्धिजीवियों ने श्रम के साथ षड़यंत्र करने के अनेक और भी तरीके निकाल लिये हैं। कृत्रिम उर्जा को श्रम सहायक मान लिया गया है जबकि कृत्रिम उर्जा श्रम का विकल्प है। बिल्कुल स्पष्ट है कि कृत्रिम उर्जा श्रम की मांग कम करती है। अतः श्रम अभाव देष में तो कृत्रिम उर्जा को सस्ता रखकर उस पर निर्भरता बढ़ाई जा सकती है किन्तु श्रम बहुल देष में कृत्रिम उर्जा को सस्ता करना और उस पर निर्भरता बढ़ाना बिल्कुल ही गलत कार्य है। भारत में सन् साठ की तुलना में कृत्रिम उर्जा की मांग आबादी की तुलना में पच्चीस गुनी अधिक बढ़ी है तथा उसी अनुपात में उसकी पूर्ति भी बढ़ी है। कृत्रिम उर्जा का मूल्य भी सन् 1960 की अपेक्षा कम हुआ है किन्तु मुद्रा स्फीति को मूल्य वृद्धि प्रचारित करके कृत्रिम उर्जा की मंहगाई का झूठ जनता के बीच सच बना दिया गया। मानवीय उर्जा के उत्पादन स्त्रोत अनाज, कपड़ा, फल, सब्जी, मकान दवा आदि पर भारी कर लगाये गये जबकि डीजल, बिजली, गैस, कोयला, मिट्टी तेल आदि पर सब्सीडी दी गई। इस षड़यंत्र से श्रम की मांग घटी और कृत्रिम उर्जा की बढ़ी। भारत में श्रम मूल्य के न बढ़ने का यह सबसे बड़ा कारण है। आष्चर्य और लज्जा का विषय है कि भारत में साइकिल पर टैक्स लगता है किन्तु इस सम्बन्ध में अब तक कोई आंदोलन नहीं हुआ।

कुल मिलाकर देखा जाए तो भारत में पूॅजीपतियों तथा बुद्धिजीवियों का एक संयुक्त षड़यंत्र चल रहा है जो सरकार के माध्यम से तो अपने अनुकूल योजनाएं बनवाता है तथा अखबारों के माध्यम से श्रम जीवियों के बीच भावनात्मक प्रचार कराता है। अनेक सामाजिक संस्थाएं भी उन्हीं के धन से श्रमिकों के हितों के नाम पर विपरीत प्रचार में संलग्न रहती हैं।

प्रस्तावित व्यवस्था में तीन प्रकार के सुझाव रखता हूॅ–

1. बेरोजगारी दूर करना। श्रम नीति बनाना, उर्जा सीमित बनाना आदि कार्य सरकार से हटकर ग्राम या जिला सभा करें। श्रम मूल्य की घोषणा भी सरकार न करे। यदि सरकार न्यूनतम श्रम मूल्य घोषित करें तो उक्त श्रम मूल्य पर किसी भी व्यक्ति को रोजगार प्राप्त करना उसका मूल अधिकार हो।
2. श्रम मूल्य की स्वाभाविक वृद्धि हेतु कृत्रिम उर्जा के मूल्यों में एकाएक ढाई गुना की वृद्धि कर दी जाय।
3. भारत की प्रगति का आंकलन उसके न्यूनतम श्रम मूल्य वृद्धि के आधार पर हो।

मैं जानता हूॅ कि अनेक विद्वान मेरे दूसरे प्रस्ताव से चौंकेंगे। उन्हें इससे तीन कठिनाइयॉ बढ़ती दिखेंगी।

1. उत्पादन घटेगा।
2. वस्तुएं मंहगी होगी।
3. भारत बैलगाड़ी युग में चला जायेगा।

मैं निष्चित रूप से कह सकता हूॅ कि पहले दोनों सोंच बिल्कुल विपरीत हैं। सच्चाई यह है कि भारत का उत्पादन भी बढ़ेगा तथा उपभोक्ता वस्तुएं भी सस्ती होंगी। आवागमन अवष्य मंहगा होगा किन्तु आवागमन मंहगा होने के बाद भी वस्तुएं मंहगी नहीं होंगी क्योंकि आवागमन व्यय की अपेक्षा कई गुना कर उत्पादक या उपभोक्ता वस्तुओं पर अभी लगता है जो समाप्त होगा। जहां तक बैलगाड़ी युग की बात है तो इतना अवष्य होगा कि आवागमन मंहगा होने से आवागमन सुविधा घटेगी। किन्तु यदि आवागमन सुविधा में कुछ कमी आने से श्रम मूल्य बढ़ता है, रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, उपभोक्ता वस्तुएं सस्ती होती है तो वह मानवीय दृष्टिकोण हमें स्वीकार करना चाहिये। बैलगाड़ी युग से बाहर निकलना अच्छी बात तो है किन्तु यह कार्य श्रम के विरूद्ध षड़यंत्र करके नहीं होना चाहिये।

मैंने नई व्यवस्था हेतु प्रस्तावित भारतीय संविधान में उक्त तीनों प्रावधानों का समावेष किया है। साथ ही मुद्रा को भी मूल रूपया के रूप में स्थायी करने की योजना रखी है जिससे मुद्रा स्फीति, कृत्रिम श्रम मूल्य, मंहगाई आदि का भ्रम बन ही न सके।

समान नागरिक संहिता

समाज षब्द की दो परिभाषाएं होती हैं–

1. स्वयं विकसित दीर्घकालिक नियम पालन से प्रतिबद्ध व्यक्तियों का समूह।
2. प्रत्येक इकाई की इकाईगत स्वतंत्रता को मान्य करने वाले व्यक्तियों का समूह। समाज की दोनों में से चाहे जो परिभाषा हम मान्य करें किन्तु मानव समूह में वर्ग विभाजन का एकमात्र आधार है मानव की प्रवृति तथा प्रवृति के आधार पर सिर्फ दो ही वर्ग बन सकते हैं–

1. समाज
2. समाज विरोधी

इस प्रकार समाज विरोधी व्यक्ति समाज का अंग नहीं माना जा सकता है क्योंकि वह तो समाज का ही विरोधी है। जो लोग नियमों के विपरीत आचरण करते हैं वे समाज के अंग नहीं हैं तभी तो उन्हें समाज से अलग जेल में रखा जाता है या मार दिया जाता है।

समाज और समाज विरोधियों के बीच सदा संघर्ष चलता रहता है। यह संघर्ष आज भी चल रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा। समाज विरोधियों से समाज की सुरक्षा के लिये जो व्यवस्था समाज ने की उस व्यवस्था का संचालन करने वाली इकाई को राज्य कहते हैं। इस तरह राज्य का एकमात्र दायित्व है समाज की सुरक्षा। समाज की सुरक्षा हेतु बनने वाली इकाई की भूमिका प्रजातंत्र में षासक की न होकर सेवक की होती है किन्तु राज्य से जुड़े लोग स्वयं को षासक के रूप में समझने की मनः स्थिति स्थापित कर लेते हैं। अतः वे निरंतर इस प्रयास में लगे रहते हैं कि उनकी षक्ति और आवष्यकता समाज में बनी रहे। यदि समस्याएं हल हो गईं या आपसी विवाद नहीं रहे तो उनके अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो सकता है। अतः राज्य से जुड़े लोगों की षासक बने रहने की महत्वाकांक्षा ही उन्हें दो दिषाओं में सक्रियता हेतु प्रेरित करती है।

1. जनकल्याण के कार्य।
2. समाज का विघटन। सत्ता के खेल में सक्रिय लोग जनकल्याण के कार्यों में भी सफलता पूर्वक लगे हैं और समाज की एकजुटता को तोड़ने में भी समाज की एकजुटता उनकी सफलता में बांधक है अतः दो बिल्लियों को आपस में लड़ाकर स्वयं बन्दर की भूमिका उनके लिये आवष्यक है तथा दो बिल्लियों को आपस में लड़ाने का एकमात्र आधार है बिल्लियों की रोटी को समान न होने देना तथा दोनों बिल्लियों को निरंतर यह महसूस कराते रहना कि उसकी रोटी दूसरों से छोटी है जो स्वयं में अन्याय है, अतः राज्य समानता की आवष्यकता बताते हुए समाज में जागृति का ढ़ोंग भी करता है तथा समानता में सर्वाधिक बाधक भी होता है। इस तरह राज्य का यह प्रयास होता है कि समाज में वर्ग निर्माण का आधार प्रवृति के स्थान पर अन्य कोई भी हो और इसीलिये राज्य से जुड़े लोग सत्ता और विपक्ष में बंटकर कोई न कोई ऐसा मुद्दा उछालते रहते हैं जो समाज को प्रवृति के अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर दो वर्गों में विभाजित कर दें।

वर्तमान समय में समाज जाति, धर्म, भाषा, राष्ट्र, क्षेत्रीयता, आर्थिक स्थिति, और लिंग, इन सात प्रमुख आधारों पर विभाजित है। पिछले पचास वर्षों से इन आधारों पर संगठन बनाने तथा वर्ग विद्वेष बढ़ाने के प्रयास जारी है। भाषा का मामला अब उतना प्रभावी नहीं रहा। जाति, धर्म, राष्ट्र क्षेत्र

और आर्थिक स्थिति आज भी पर्याप्त प्रभाव रखते हैं तथा लिंग भेद अपने प्रारंभिक चरण में है जो अब सर्वाधिक सफल अस्त्र समझा जा रहा है। नये–नये संगठन बन रहे हैं। संगठन का सैद्धान्तिक पक्ष होता है, मजबूत से सुरक्षा और व्यावहारिक पक्ष होता है कमजोरों का षोषण। कोई भी संगठन चाहे वह भिखारियों या मजदूरों का ही क्यों न हो, प्रारम्भ में षोषण के विरूद्ध टकराता है तथा टकराव में जीत जाने के बाद स्वयं षोषण करता है। यहीं संगठन का नियम है। धीरे–धीरे ये संगठन स्वयं के साथ समाज षब्द जोड़ लेते हैं। इस तरह समाज का वास्तविक स्वरूप नष्ट होकर एक के स्थान पर अनेक समाज बन जाते हैं जो समाज में भ्रम पैदा करते हैं।

समाज में समानता के प्रयास ही स्वयं में षड़यंत्र है। जब प्राकृतिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव, भिन्न–भिन्न क्षमता के हैं तो इन भिन्न–भिन्न क्षमताओं के समान परिणाम न तो संभव हैं न ही उचित। राज्य द्वारा इन असमान परिणामों को समान करने का प्रयास ही वर्ग विद्वेष का सूत्रधार है। समान का अर्थ व्यक्तियों के आपसी संव्यवहार में समानता नहीं हो सकता बल्कि व्यक्तियों के आपसी संव्यवहार में राज्य की भूमिका की समानता से लिया जाना चाहिये किन्तु राज्य ने इसके ठीक विपरीत अर्थ निकालकर व्यक्तियों के आपसी संव्यवहार में समानता के प्रयास षुरू किये जो वास्तव में राज्य की असमान भूमिका के आधार बने। राज्य असमानता दूर करने का माध्यम बनकर असमानता की परिभाषा, पहचान तथा अपने हस्तक्षेप की भूमिका बनाने में लग गया। अब राज्य षासक की भूमिका में खड़ा हो गया।

राज्य के अतिरिक्त कोई भी अन्य इकाई यदि समानता के प्रयास करें तो वह समाज के हित में हैं क्योंकि वह किसी इकाई के इकाई गत मामले में हस्तक्षेप तो कर नहीं सकती। अधिक से अधिक उसकी भूमिका यही हो सकती है कि वह ज्ञान दे या सहायता करें। समानता के लिये ज्ञान या सुविधा देना या अन्य कोई सहायता करना तो पुण्य कार्य है। किन्तु राज्य ही एकमात्र ऐसी अधिकार सम्पन्न इकाई है जो समाज विरोधी तत्वों की पहचान भी करती है और दण्डित भी। अतः यदि राज्य ही समानता के कार्य में लग गया तो राज्य का अपना कार्य तो पिछड़ेगा ही, राज्य स्वयं ही अन्याय का केन्द्र बन जायेगा क्योंकि समानता संभव ही नहीं है जब तक मनुष्य रोबोट या मषीन कृत न हो। अतः समानता का सिर्फ एक ही अर्थ होता है समान नागरिक संहिता न कि समान व्यक्ति संहिता। नागरिक संहिता और व्यक्ति संहिता बिल्कुल भिन्न–भिन्न हैं। व्यक्ति अपनी आचरण संहिता के लिये स्वतंत्र है किन्तु जब उसका संबंध किसी अन्य के साथ जुड़ता है तब नागरिक संहिता लागू होती है और राज्य की भूमिका बीच में आ जाती है। नागरिक संहिता का उद्देष्य किसी इकाई के इकाईगत संव्यवहार को स्थापित करना नहीं है बल्कि इकाईयों के बीच में आपसी संव्यवहार को नियमित करना है। इस तरह यदि हम भारत के वर्तमान संविधान पर विचार करें तो उसकी उद्देष्यिका में ही अवसर की समानता षब्द लिखकर भूल कर दी गई। अवसर की स्वतंत्रता षब्द होना चाहिये था किन्तु वैसा नहीं हुआ। भारतीय संविधान का निर्माण करते समय या तो संविधान निर्माताओं ने भूल की या उस समय की परिस्थितियों ने उन्हें ऐसे गोलमटोल अंष जोड़ने को मजबूर किया यह कहना संभव नहीं किन्तु संविधान का प्रारूप देखकर ऐसा महसूस तो होता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। भारतीय संविधान की धारा चौदह में लिखा है कि भारत राज्य के किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा। संविधान की धारा पन्द्रह में लिखा है कि राज्य किसी नागरिक से धर्म, जाति, मूलवंष, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा किन्तु यह बात बालकों, स्त्रियों, हरिजनों, आदिवासियों तथा सामाजिक षैक्षणिक पिछड़े लोगों के संबंध में लागू नहीं होगी। भारत की सम्पूर्ण आबादी में से यदि इन सबकों निकाल दिया जाय तो षेष करीब दस प्रतिषत ही नागरिक बचते हैं जिनके संबंध में राज्य विभेद नहीं करेगा। अब मैं नही समझ पा रहा हूँ कि संविधान में विभेद नहीं करेगा यह लिखने की आवष्यकता ही क्या थी? क्या किसी भी सामान्य नियम से 90 प्रतिषत का अपवाद हो सकता है? पहले समानता की बात लिखकर परन्तु लगाना और परन्तु लगाकर मूल बात को अर्थ हीन बनाना जैसी चालाकी, समझ में नहीं आता कि क्यों की गई? धारा चौदह में जब राज्य के समक्ष प्रत्येक व्यक्ति समान होगा तब धारा पन्द्रह में धर्म, जाति, मूल वंष आदि फिर लिखने की क्या आवष्यकता थी? धारा चौदह ही समानता के लिये पर्याप्त थी। फिर यह भी स्पष्ट है कि धारा चौदह में व्यक्ति षब्द है, फिर धारा पन्द्रह में नागरिक षब्द क्यों किया गया? जब भारत का व्यक्ति ही समान है तब नागरिक तो अपने आप समान हो गया। इसी तरह धारा सोलह में लिखा गया है कि राज्य के अधीन किसी पद पर नियुक्ति में अवसर की समानता होगी। किन्तु इसी संविधान की प्रस्तावना में इसके ठीक विपरीत लिखा गया है कि राज्य अवसर की समानता प्राप्त कराने की व्यवस्था करेगा। राज्य के पदों पर नियुक्ति में समानता तथा सभी अवसरों पर अवसर की समानता में बहुत अन्तर है। यदि धारा सोलह के आधार पर सिर्फ षासकीय नौकरियों में समानता की बात राज्य का दायित्व है तो प्रस्तावना में अवसर की समानता प्राप्त कराने जैसा षब्द अनावष्यक है। इसी तरह धारा सोलह में पहले लिखा गया कि राज्य के समक्ष सबकों षासकीय नौकरियों में धर्म, जाति, वंष, लिंग, जन्मस्थान या निवास के आधार पर वंचित नहीं किया जायेगा। इस तरह समानता के विचार को इतना प्रबल स्वरूप दिया गया है कि उस बात को दो बार लिखा गया किन्तु उसके तत्काल ही बाद लिख दिया गया कि यह बात किसी पिछड़े हुए या धर्म विषेष के सम्बन्ध में लागू नहीं होगी। इस तरह इस धारा का भी परन्तु लगाकर पूरा अर्थ ही निष्क्रियकर दिया गया। जब परन्तु लगाकर समानता के अर्थ को कमजोर ही करना था तो उसे दो बार लिखकर मजबूत ही क्यों करना था?

इसी तरह धारा उन्नीस में लिखा है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को वाक स्वातंत्र, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निरायुध षांतिपूर्ण सम्मेलन, सर्वत्र आबाध संचरण, भारत में कहीं भी बस जाने का कोई भी व्यापार कारोबार करने की स्वतंत्रता होगी। किन्तु यह बात भारत की प्रभुता, अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेष संबंध, लोक व्यवस्था, भ्रष्टाचार सदाचार, आदि के हित में राज्य को निगम बनाने से नहीं रोकेगी। यह मैं आज तक नहीं समझ सका कि लोक व्यवस्था और सदाचार तक के लिये राज्य को अधिकार दे देने के बाद बाकी क्या बचता है? इस तरह भारतीय संविधान में जहां–जहां समानता की घोषणा की गई है वहीं वहीं परन्तु लगातार समानता को पूरी तरह निष्प्रभाषी करने की भी चालाकी की गई है। मेरे विचार में भारतीय संविधान की यह एक बड़ी कमजोरी है।

मैं आज तक नहीं समझ सका कि भारतीय संविधान ने इकाईयों के स्थान पर वर्ग को क्यों महत्व दिया? व्यक्ति, परिवार और ग्राम की स्वाभाविक इकाइयॉ थीं। फिर धर्म, जाति, और लिंग के आधार पर बने संगठनों को इकाई मानना क्यों आवष्यक हुआ? मेरे विचार में स्वतंत्रता की जल्दी में संविधान निर्माताओं ने अपना संविधान बनाने के स्थान पर विदेषों के अनेक संविधानों की कुछ कुछ बातें मिलाकर एक नया संविधान बना दिया। दूसरी बात यह भी रही है कि अंग्रेजों के लिये फूट डालकर राज्य करना मजबूरी थी जिसके लिये उन्होंने धर्म, जाति, भाषा, लिंग आदि के आधार पर वर्ग निर्माण को प्रोत्साहित किया। तीसरी बात यह भी संभव है कि स्वतंत्रता के समय बने हुए वर्ग स्वतंत्रता में बाधक न बन जावें इसलिये भी संविधान निर्माताओं ने उस समय के अनेक वर्गों से समझौते किये। यह भी हो सकता है कि स्वतंत्रता की लड़ाई में अति भावना प्रधान राष्ट्र पुरूषों को जब संविधान बनाना पड़ा तो ये उच्च आदर्षवादी संविधान बनाने की भूल कर बैठे। व्यावहारिकता का आकलन नहीं कर सके। कारण चाहे जो हो किन्तु भारत में प्रचलित संविधान ने वर्ग विद्वेष कों भरपूर मदद की। परिणाम यह हुआ कि आज भारत का आम नागरिक धर्म, जाति, और आर्थिक स्थिति के आधार पर बने कई वर्गों में विभाजित होकर आपसी संघर्ष में उलझ गया है। भाषा और क्षेत्रीयता के नाम पर होने वाले वर्ग संघर्ष में कुछ कमी दिख रही है और उसके स्थान पर उम्र और लिंग भेद धीरे धीरे स्थान ग्रहण कर रहा है। गरीब और अमीर के बीच वर्ग विद्वेष अपने चरम पर है और साम्यवादी दल इस विवाद को ही मुख्य मुद्दा बनाये हुए हैं। आदिवासी हरिजन और पिछड़ों को उच्च जाति से लड़ा भिड़ाकर जनतादल, राष्ट्रीय जनतादल, सत्ता प्राप्त करना चाहता है। भाजपा का हिन्दुओं का मुसलमानों और इसाईयों के विरूद्ध मोर्चा बनवाना जग जाहिर है। कांग्रेस इन सबके समान स्पष्ट न होकर गरीब, आदिवासी, हरिजन तथा इसाई मुसलमान को प्रत्यक्ष तथा अन्यों को अप्रत्यक्ष समर्थन देकर टकराव में निरंतर घी डालती रहती है। वर्ग विद्वेष के मामले में कांग्रेस का खेल सबकी अपेक्षा अधिक अप्रत्यक्ष, चालाकी भरा और खतरनाक रहा है। इस तरह वर्तमान में कोई भी दल ऐसा नहीं जो वर्ग संघर्ष का मार्ग छोड़कर समाज विरोधी तत्वों के विरूद्ध समाज को एकत्र करने का विष्वास करता हो। और कोई दल करे भी

कैसे? जब भारतीय संविधान की प्राथमिकताएं ही वर्गविद्वेष को आधार बनाकर निष्चित की गई हों तब कोई भी राजनैतिक दल किस तरह कोई अन्य पहल कर सकता है।

मैंने बहुत गंभीरता से इस मुद्दे पर विचार किया और इस नतीजे पर पहुंचा कि भारत के अधिकांष विवाद भारतीय संविधान की असमान नागरिक संहिता के ही By Product हैं। अतः यदि इन विवादों को नियंत्रित करना है तो भारत में समान नागरिक संहिता अपनानी होगी अर्थात् भारत एक सौ करोड़ व्यक्तियों, बीस करोड़ परिवारों या एक लाख गांवों का देष होगा न कि धर्मों, जातियों लिंगों या आर्थिक स्थिति के आधार पर बने वर्गो का संघ। ऐसा परिवर्तन आवष्यक है। इस उद्देष्य से मैंने प्रस्तावित संविधान की धारा 159 में यह प्रावधान किया है कि भारतीय संविधान के अन्तर्गत किसी भी मामले में धर्म, जाति, भाषा और लिंग का कोई भेद नहीं किया जायेगा। यह प्रावधान बिल्कुल स्पष्ट है तथा इसमें कोई किन्तु परन्तु नहीं है। इस एक प्रावधान से ही सब प्रकार के वर्ग टकराव समाप्त हो जायेंगे।

प्रष्न 1. भारतीय जनता पार्टी हमेषा समान नागरिक संहिता के पक्ष में रही है। क्या आपका सोच भी उसी दिषा में हैं?

उत्तर यह कहना गलत है कि भारतीय जनता पार्टी समान नागरिक संहिता के पक्ष में हैं। समान नागरिक संहिता और हिन्दू राष्ट्र या गोवध बन्दी की मांग परस्पर विरोधी है। भा. ज. पा. का संघ गुट समान नागरिक संहिता के नाम पर मुस्लिम विषेषाधिकार हटाने तक ही सीमित है। मैं समान नागरिक संहिता मुस्लिमों की प्रतिक्रिया के रूप में प्रस्तुत नहीं कर रहा बल्कि व्यापक रूप में रख रहा हूँ।

प्रष्न 2. क्या समान नागरिक संहिता लागू होने पर गोवध बन्दी की मॉग बन्द होगी?

उत्तर– कानून की दृष्टि में सभी पषु पषु होंगे। सरकार को किसी पषु के बध या सुरक्षा में कोई हस्तक्षेप नहीं करना है क्योंकि यह उसका दायित्व नहीं है। गांव यदि ऐसा कोई नियम बनावे तो बना सकता है।

प्रष्न 3. आज महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उन्हें पुरूषों के अत्याचार से सुरक्षा चाहिये। उन्हें षिक्षा में और नौकरी में प्राथमिकता चाहिये। उन्हें पुरूषों के षोषण के बचाने हेतु आरक्षण चाहिये। आपके अनुसार यदि हुआ तो महिलाओं के साथ तो घोर अन्याय हो जायेगा?

उत्तर महिलाओं के संबंध में आपके विचार प्रथा पर आधारित है विचार पर नहीं। मैंने इस समस्या पर गहन विचार किया तो पाया कि महिलाओं के सम्बन्ध में समाज में अनेक भ्रान्तियां फैलाई गई है।

1. आम तौर पर माना जाता है कि समाज में पुरूष वर्ग महिलाओं के वर्ग को दबाकर रखता है तथा महिलाएं पुरूषों के समक्ष दूसरे दर्जे का वर्ग मानी जाती हैं। किन्तु यह धारणा पूर्णतः गलत है। परिवार में पुरूष प्रधान व्यवस्था लागू है किन्तु समाज में नहीं। एक कलेक्टर की पत्नी को उसका चपरासी पुरूष दूसरा दर्जा नहीं देता या मेरी पत्नी ही मेरे पुरूष नौकर को पहला दर्जा नहीं मानती। अतः नारी पुरूष अधिकार भेद परिवार व्यवस्था तक सीमित है न कि पुरूष वर्ग और महिला वर्ग तक। मुसलमान राष्ट्रों में तो यह वर्ग भेद है किन्तु भारत में नहीं।

2. परिवार में पुरूष नारी पर अत्याचार करता है। ऐसी धारण बनी हुई है जो गलत है। वास्तव में पुरूष का चरित्र अत्याचारी नहीं है बल्कि यह समान व्यवस्था का दोष है जो पुरूष प्रधान परिवार व्यवस्था को मानता है। किसी भी परिवार की संरचना में प्रत्येक महिला अपने से अधिक योग्य पुरूष के साथ और प्रत्येक पुरूष कम योग्य महिला के साथ जुड़कर परिवार बनाते हैं। ऐसे परिवार में पुरूष का प्रधान होना स्वाभाविक है। जो महिलाएं पुरूष अत्याचारों के विरूद्ध समाज में सक्रिय हैं वे भी अपनी कन्याओं का विवाह कमयोग्य पुरूष से करना नहीं चाहती। पुरूष प्रधान व्यवस्था को पुरूष अत्याचार कहना गलत है। इसके लिये तो विवाह के समय ही परिवार रचना पर योग्यता का मापदण्ड बदलने की आवष्यकता होगी।

3. यह धारणा फैली हुई है कि दहेज के लिये महिलाओं पर भारी अत्याचार होते हैं। यह धारणा भी गलत है। दहेज अत्याचार महिलाओं पर पुरूषों द्वारा नहीं होते बल्कि महिलाओं की ही भूमिका इसमें अधिक होती है। दहेज हत्याओं के किस्से भी बहुत चढ़ा कर प्रचारित हो रहे हैं। मैंने एक षहर का सर्वेक्षण करके पाया कि वहां पति प्रताड़ित महिलाओं की आत्महत्याएं दस वर्षों में चार हुईं और पत्नी प्रताड़ित पुरूषों की आत्म हत्याएं भी उक्त अवधि में चार हुईं। सच्चाई यह है कि अनेक परिवारों में पत्नी पीड़ित है, अनेक में पति। अत्याचार किसी वर्ग का स्वभाव नहीं बल्कि व्यक्ति का स्वभाव है।

4. एक धारणा यह भी फैली हुई है कि पति पत्नी पर निरंतर अत्याचार करता है। पति षोषक और पत्नी षोषित है। यह सोच भी गलत है। यदि पति षोषक मात्र होता तो पति की मृत्यु पर पत्नी प्रसन्न होती क्योंकि षोषक से मुक्ति कभी कष्टदायक नहीं हो सकती।

इस तरह स्पष्ट है कि पुरूष वर्ग के द्वारा महिला वर्ग के उत्पीड़न की बात गलत है। सच्चाई यह है कि समाज व्यवस्था में महिला और पुरूष समानता का जो आधार निर्धारित हुआ वह बदलना चाहिए। अब तक महिला पुरूष समानता में योग सिद्धांत काम में आते हैं। 1. सम्पूर्ण समानता जिसमें प्रत्येक मकान जमीन और सामान का अलग अलग दो भाग हो जाता है। 2. योग समानता जिसमें कुल सम्पत्ति एक करके दो भाग होता है। इसमें आवष्यक नहीं कि प्रत्येक मकान या जमीन को बीच में बांट दिया जाये। अब तक योग सिद्धांत के अनुसार बाहर की व्यवस्था पुरूष को और घर की नारी को दी गई। यदि पुरूषों को कुछ अधिकार दिये गये तो नारी को भी कई विषेष अधिकार देकर उसकी भरपाई की गई। समाज की इस व्यवस्था के कारण परिवार में पुरूष और नारी के बीच एक खाई पैदा हुई जिसे सुधारा जाना चाहिए विवाह के समय पुरूष से नारी अधिक योग्य का चयन हो यह कानून से संभव नहीं और न ही यह आवष्यक ही है किन्तु परिवार की सम्पति में पुरूष और नारी का समान हिस्सा स्थापित हो जाये तो अनेक समस्याएं हल हो जायेंगी। मैंने प्रस्तावित संविधान में इस संबंध में तीन संषोधन किये हैं:–

1. परिवार की सम्पत्ति में परिवार सदस्यों का समान हिस्सा होगा।

लड़की जब तक पिता परिवार में हैं तब तक वह वहॉ का हिस्सा है। पति परिवार में षामिल होते समय वह पिता परिवार से हिस्सा लेकर पति परिवार में षामिल होगी और पति परिवार में ही उसका हिस्सा होगा।

2. परिवार का मुखिया परिवार के लोग चुनेंगे।

3. परिवार प्रमुख परिवार का सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति होगा। इससे 50% प्रमुख महिलाओं में से अपने आप का जावेगी तथा मुखिया चुनने में भी उनकी भूमिका का महत्व बढ़ जावेगा। ये तीन ही संषोधन महिला समानता के लिये पर्याप्त हैं।

महिला समानता के नाम पर आरक्षण या आन्दोलन की चर्चा घातक भी है और षड़यंत्र भी। अन्य जो भी वर्ग बनाये गये उन सबने समाज में विद्वेष फैलाया है। परन्तु परिवार अछूता रहा। किन्तु महिला पुरूष वर्ग भेद ने पति पत्नी के बीच भेद की दीवार खड़ी कर दी जो महिलाओं के उत्थान से होने वाले लाभ की अपेक्षा अधिक हानिकारक होगी। महिला समानता का कोई ऐसा मार्ग खोजा जाना चाहिए जो कि परिवार टूटने का आधार न बन जावे। अतः यह वर्ग भेद घातक है। इस वर्ग भेद में सम्पन्नों बुद्धिजीवियों का षड़यंत्र भी है। यदि संसद या षासकीय नौकरी में लाभ के पद महिलाओं के नाम पर आरक्षित हो जावे तो अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति कुछ परिवारों तक सिमट कर रह जायेगी। पहले कुल पांच सौ चालीस सांसदों में चार सौ परिवारों के लोग चुनकर जाते थे जो अब महिला आरक्षण के बाद तीन सौ परिवार में सिमट आवेंगे क्योंकि महिला कोटे से पत्नी का भी जाना सुगम हो जायेगा। यदि युवकों का भी आरक्षण हो जाये तो और अच्छा हो जायेगा। सारा खानदान ही संसद में पहुंच जावेगा। जो लोग महिला आरक्षण की बात करते हैं वे बतायें कि संसद में मेरे परिवार की महिलाएं वर्तमान सांसद की पत्नी के संसद में पहुंचना अधिक अच्छा मानेगी या मेरा। यदि महिला एक वर्ग होता तो उन्हें वर्तमान सांसद की महिला पत्नी के जाने पर खुष होना था किन्तु ऐसा नहीं होना यह सिद्ध करता है कि परिवार की सहज इकाई को महिला पुरूष वर्ग में विभाजित करके महिला आरक्षण की पृष्ठभूमि बनाना राजनेताओं द्वारा सारे अधिकारों को कुछ परिवारों तक सिमटाने का षड़यंत्र

है। यदि कोई आरक्षण ही करना है तो यह होना चाहिये कि किसी भी एक परिवार का एक से अधिक सदस्य संसद या विधान सभा में नहीं जा सकता। इससे कम से कम पन्द्रह हजार परिवारों तक राजनीति का विकेन्द्रीयकरण हो जाता है।

इस तरह समान नागरिक संहिता महिलाओं के लिये घातक नहीं है यदि सम्पत्ति तथा परिवार की संरचना में उन्हें समान अधिकार दे दिया जाय।

प्रष्न 4. वर्तमान समय में भारत में आदिवासियों और हरिजनों का आरक्षण देकर उन्हें समाज में समान रूप में स्थापित करने का प्रयास चल रहा है। आपकी समान नागरिक संहिता तो उन्हें फिर से पुराने अंधकूप में ढकेल देंगी?

उत्तर उच्च वर्ग के लोगों का सामाजिक आरक्षण हजारों वर्षों से स्थापित था जिसने समाज में अनेक जातियों की योग्यता को बाधित किया। उच्च जातियों के इस सामाजिक आरक्षण के विरूद्ध स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक आरक्षण षुरू हुआ जिसने सामाजिक आरक्षण को कमजोर किया और निम्न वर्ग को उपर उठाने में सहायता की। किन्तु इस आरक्षण ने जाति व्यवस्था को जातिवाद में बदल दिया जो काफी घातक सिद्ध हुआ। सन् 1947 में जाति प्रथा का जो अन्यायी स्वरूप था वह अब जाति विद्वेष का रूप ले चुका है। मेरे विचार में जातीय आरक्षण के स्थान पर जाति प्रथा उन्मूलन का प्रयास अधिक कारगर होता है। आदिवासी षब्द तो वास्तव में अत्यन्त ही घातक है। भारत में आदिवासी षब्द को समाप्त कर देना चाहिये। अछूत या पिछड़े वर्ग का आरक्षण तो तर्क संगत हो सकता है। पिछड़े में ही अति पिछड़ा वर्ग भी बनाया जा सकता है किन्तु आदिवासी मान्यता या आरक्षण स्वयं में समाज के लिये बहुत घातक है।

मेरे विचार में यदि श्रम का मूल्य बढ़ जावे तो आदिवासी हरिजन और पिछड़े का आरक्षण अनावष्यक हो सकता है। अधिकांष पिछड़े लोग श्रम प्रधान हैं और उच्च वर्ग के लोग बुद्धि प्रधान। श्रम को महत्व देकर पिछड़ों को आगे लाना संभव है तथा इससे जातिवाद भी समाप्त हो सकता है।

प्रष्न 5. यदि आरक्षण पूरी तरह समाप्त हो गया तो संसद, विधान सभा और षासकीय नौकरियों में अभी जो आदिवासी हरिजन और पिछड़े हैं वे भी नहीं पहुंच सकेंगे और उच्च वर्ग का सब जगह एकाधिकार हो जावेगा?

उत्तर वर्तमान व्यवस्था के आधार पर तो ऐसा ही होगा किन्तु प्रस्तावित संविधान लागू होने के बाद विधान सभा समाप्त हो जावेगी, संसद महत्वहीन हो जायेगी और सरकारी नौकरियां भी आकर्षक नहीं रहेंगी तब कोई सवर्ण उधर जाने हेतु क्यों प्रयत्न करेगा? वह उससे अधिक लाभ का प्रयास करेगा। अतः आपकी चिन्ता अनावष्यक है। श्रम मूल्य प्रतिस्थापना, षासकीय विभागों को कम करके पांच तक सीमित करना, सम्पति पर कर, कृत्रिम उर्जा पर कर, ग्राम स्वराज्य संसद का सुरक्षा निगम के रूप में बदलना आदि संषोधनों के बाद आप स्वयं अनुभव करेंगे कि किसी आरक्षण की आवष्यकता नहीं के बराबर रहेगी।

प्रष्न 6. समान नागरिक संहिता भारत के मुसलमानों के विरूद्ध होगी। यह उनके धर्म के भी विरूद्ध है। मुसलमान उसे क्यों मानेगा? आप उनके चार षादी के धार्मिक अधिकार पर रोक लगावे, यह कितना उचित है?

उत्तर समान नागरिक संहिता मुसलमानों के विरूद्ध बिल्कुल नहीं है। भारतीय संविधान का किसी षादी विवाह से क्या संबंध है? आप चाहे एक षादी करें या चार या दस। यह तो परिवारिक मामला है, संवैधानिक नहीं। मुसलमान और हिन्दू कितने भी विवाह करने को स्वतंत्र होंगे। मेरा तो यह विष्वास है कि समान नागरिक संहिता में मुसलमानों के विरूद्ध कुछ है ही नहीं। बल्कि गौहत्या का कानून जब पूर्णतः संविधान से हटेगा तब हिन्दू ही इसका अधिक विरोध करेंगे। अब तक समान नागरिक संहिता का जो अर्थ लगाया जा रहा है वह समान आचार संहिता से है जिसका अर्थ है कि हिन्दू यदि एक षादी से बंधा है तो मुसलमान का भी आचरण वहीं हो। किन्तु यदि आचरण संहिता और नागरिक संहिता का फर्क समझ लिया जाये तो मुसलमान बिल्कुल विरोध नहीं करेंगे।

प्रष्न 7. आपने कब्रिस्तान पर भी 2% कर लगाया है। मुसलमान कैसे सहेगा?

उत्तर– कब्रिस्तान पर लगने वाला कर यदि वहां के मुसलमान चंदा कर के दे दें या षासकीय अनुदान में कटौती कर दें तो क्या दिक्कत है? अनुदान सब बराबर लेंगे और टैक्स नहीं देंगे वह संभव नहीं। मन्दिर और धर्मषाला भी तो टैक्स देंगे। फिर मुसलमानों को ही क्यों आपत्ति होगी? एक बार टैक्स लग जावेगा तब अपने आप पता चल जायेगा कि सैकड़ों एकड़ कब्रिस्तान की उन्हें कितनी आवष्यकता है।

प्रष्न 8. आप समानता को किस रूप में स्थापित करना चाहते हैं?

उत्तर समानता दो प्रकार की है।

1. असमान नागरिकों को समान करने का प्रयत्न।
2. असमान नागरिकों की स्वतंत्रता में समान हस्तक्षेप।

पहले प्रकार की समानता असंभव है। प्राकृतिक रूप से कोई दो व्यक्ति कुल मिलाकर, गुण कर्म, स्वभाव में समान नहीं है। जब व्यक्तियों की क्षमता ही असमान है तो उसके परिणाम भी असमान होंगे। अतः अवसर की समानता असंभव है और कुछ लोग अन्य लोगों में ईर्ष्या भाव जगाकर वर्ग निर्माण करना चाहते हैं जिससे कि समाज में उनकी आवष्यकता बनी रहे और वे निरंतर षासक के समान बिचौलिये बनकर मजा लेते रहे। पहले प्रकार की समानता के प्रयत्न दूसरे प्रकार की समानता के ठीक विपरीत होते हैं। ये प्रयत्न जितने अधिक होंगे उतने ही षासन के अधिक हस्तक्षेप की भूमिका तैयार करेंगे और उतनी ही अधिक अधिकारों की असमानता में वृद्धि करेंगे। समाज में स्थित किसी भी प्रकार की असमानता की अपेक्षा अधिकारों की असमानता अधिक घातक है। दूसरे प्रकार की समानता के यदि प्रयत्न होते हैं तो उसके लिये समान नागरिक संहिता लागू करनी आवष्यक है। इससे इकाई के इकाईगत जीवन में षासकीय हस्तक्षेप के अवसर घटते चले जाते हैं।

प्रष्न 9. समान नागरिक संहिता के लिये संविधान संषोधन की अपेक्षा राष्ट्रवादी विचारों को प्रोत्साहित किया जाय तो क्या हर्ज है?

उत्तर मैं संविधान संषोधन की बात नहीं कह रहा बल्कि संविधान के उन अंषों को संविधान से निकालने की बात कह रहा हूँ जो जाति धर्म भाषा लिंग के आधार पर वर्ग भेद पैदा करते हैं। राष्ट्रीयता की भावना उचित है और राष्ट्रवाद घातक। राष्ट्रवाद का प्रचार तो आम नागरिक की गुलामी की भावना को मजबूत करने के लिये उभारा जाता है। जिससे हर व्यक्ति के अन्दर उसके व्यक्तित्व के उपर नागरिकता हावी हो सके और जिसके परिणाम स्वरूप षासक और षासित की भावना मजबूत होती रहे।

विधायिका और उसका स्वरूप

प्रजातंत्र की यह अनिवार्य षर्त होती है कि वहां कानून का षासन हो। यदि कानून का षासन न होकर व्यक्ति या ग्रुप का षासन हो तो वह प्रजातंत्र नहीं हो सकता। कानून का षासन हो इसके लिये सबसे अधिक संवेदनषील मुद्दा है– कानून बनाने वालों के अधिकार। कानून सम्पूर्ण समाज तो बैठकर बना नहीं सकता और यदि कानून कुछ लोग बैठकर बनाने के लिये स्वतंत्र हों तो वह प्रजातंत्र नहीं है। अतः कानून बनाने की प्रकिया इतनी जटिल रखनी पड़ती है कि Check and Balance System पूरी तरह सुरक्षित रहे।

कानून बनाने में प्रमुख भूमिका निभाने वाली संस्था को विधायिका कहते हैं। प्रजातंत्र में यद्यपि न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के अधिकारों का समन्वय होता है किन्तु चूंकि न्यायपालिका कानून के अनुसार ही न्याय कर सकती है, उसे न्याय करने की स्वतंत्रता नहीं तथा

कार्यपालिका भी विधायिका के निर्णय के विपरीत नहीं जा सकती है अतः तीनों अंग त्रिभुज की तीन बराबर भुजाओं के समान होते हुए भी विधायिका आधार भुजा के समान महत्वपूर्ण हो जाती है।

विधायिका के तीन अंग होते हैं।

1. राष्ट्रपति।
2. लोकसभा।
3. राज्यसभा।

कानून बनाने के उद्देष्य से तो लोकसभा ही पर्याप्त होती है किन्तु प्रजातांत्रिक मूल सिद्धांतों के आधार पर राज्यसभा और राष्ट्रपति की आवष्यकता लोकसभा पर अंकुष और समीक्षा हेतु है। इस तरह राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा मिलकर कानून बनाने का दायित्व पूरा करते हैं। लोकसभा मूलतः कानून बनाने वाली इकाई होती है। राज्य सभा लोकसभा के बनाये कानूनों की समीक्षा करती हैं। राष्ट्रपति, कानून निर्माण की प्रक्रिया में सिर्फ औपचारिकता पूरी करता है क्योंकि अन्तिम रूप से उसी के हस्ताक्षर के बाद कोई कानून अस्तित्व में आता है। कानूनों में राज्यसभा और लोकसभा की समान भूमिका होती है जबकि राष्ट्रपति की भूमिका औपचारिकता के अतिरिक्त कुछ नहीं होती।

विधायिका द्वारा बनाये हुए कानूनों का परिपालन कार्यपालिका के जिम्मे हैं। कार्यपालिका का निर्माण राष्ट्रपति, मंत्रिमंडल तथा कर्मचारियों को मिलाकर होता है जो लोकसभा द्वारा चयनित प्रधान मंत्री द्वारा बनाया जाता है। इस मंत्रिमंडल के ही नियंत्रण में सम्पूर्ण कार्यपालिका काम करती है। राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक अध्यक्ष मात्र होता है। राष्ट्रपति को कार्यपालिका के अधिकार नहीं होते। कर्मचारी वर्ग सीधे राष्ट्रपति से संबद्ध होता है। कर्मचारी वर्ग यद्यपि सीधा मंत्रिमंडल से जुड़ा नहीं होता किन्तु कार्यपालिका के कार्यों में मुख्य भूमिका मंत्रिमंडल की ही होने से कर्मचारी वर्ग भी अप्रत्यक्ष रूप से मंत्रिमंडल से ही जुड़ा होता है। राष्ट्रपति तो कर्मचारी वर्ग का भी प्रतीक स्वरूप ही मुखिया होता है।

संसद और कार्यपालिका पूरी तरह कानून के अनुसार ही कार्य कर सकती हैं, कानून से बाहर नहीं। और कानून संविधान के ही आधार पर बन सकते हैं संविधान के बाहर नहीं। कानून बनाना विधायिका के अधिकार क्षेत्र में है और पालन कराना भी विधायिका द्वारा बनाये गये मंत्रिमण्डल के अधीन। अतः विधायिका का महत्व बहुत अधिक होता है।

षासन के तीन अंग है– कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका। भारत के आम नागरिक विधायिका का चुनाव मतदान द्वारा करते हैं जबकि कार्यपालिका और न्यायपालिका का निर्माण विधायिका द्वारा संविधान के अन्तर्गत बनाये गये नियमों के अन्तर्गत होता है। विधायिका में से भी लोकसभा का चुनाव आम लोग प्रत्यक्ष मतदान द्वारा करते हैं तथा राज्यसभा का चुनाव लोकसभा द्वारा ही अप्रत्यक्ष तरीके से। संविधान में संषोधन भी विधायिका ही करती हैं अतः संविधान, कानून, कानूनों का पालन और न्याय तक में आम नागरिकों की सिर्फ एक ही सहभागिता होती है और वह है लोकसभा का चुनाव। चुनाव के बाद बनने वाली लोकसभा और उसके द्वारा समय–समय पर निर्मित अन्य संवैधानिक इकाइयॉ मिलकर षासक की भूमिका में स्थापित हो जाती हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से मालिक होते हैं। कैसी विडम्बना है कि जो संसद संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है वहीं संसद संविधान में संषोधन तक के अधिकार रखती है। भरतीय संविधान की सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि उसने विधायिका को संविधान संषोधन तक के असीम अधिकार प्रदान कर दिये यहां तक कि संविधान की प्रस्तावना और व्यक्ति के मूल अधिकारों तक में। न्यायालयों ने अवष्य ही यदा कदा विधायिका द्वारा संविधान के मूल ढांचे के परिवर्तन में एक अड़ंगा लगाने का असंवैधानिक प्रयास किया किन्तु इस प्रयास से भी न तो विधायिका की तानाषाही पर रोक लगी न ही मूल ढांचा ही आज तक स्पष्ट हुआ। परिणाम हुआ कि विधायिका षासक की भूमिका में स्थापित हो गई और धीरे–धीरे विधायिका ने व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक की सभी इकाइयों के अधिकार अपने में समेट लिये। आम नागरिक वोट देने तक का मालिक और षेष समय में गुलाम हो गया। तराजू के नागरिक के पलड़े पर उसका वोट चढ़ा और दूसरे पलड़े पर विधायिका के अधिकार तो आम नागरिक का पलड़ा उपर उठते–उठते गुलामी की सीमा को छूने लगा। जहां अधिकार केन्द्रित होते हैं वहां भ्रष्टाचार से प्रारंभ होकर जघन्य अपराधों तक के अवसर पैदा होते हैं। अधिकारों के केन्द्रीयकरण का परिणाम हुआ कि विधायिका में पहले भ्रष्टाचार घुसा बाद में अनाचार और दुराचार और अब तो वह सब बढ़ते–बढ़ते सब प्रकार के अपराधों का केन्द्र बन गया। चुनाव से लेकर संसद में कानून बनने तक और कानून बनने से लेकर उसके कार्यान्वयन तक जिस तरह अनैतिक और अपराधिक दृष्टि दिखाई पड़ रही हैं वह सब चिन्ता का विषय है। वर्तमान स्थिति इस तरह की है कि विधायिका की भूमिका को अपराध नियंत्रण में असफल कहना गलत होगा बल्कि यह कहा जा सकता है कि विधायिका अपराध करने में पूर्णतः सफल है।

मैंने नई व्यवस्था के लिये जिस संविधान का प्रस्ताव किया है उसमें निम्न महत्वपूर्ण संषोधन प्रस्तावित है–

1. वर्तमान समय में अधिकारों को दो भागों में विभाजित करके कुछ अधिकार केन्द्र सरकार के पास हैं और कुछ प्रदेष सरकारों को दिये गये हैं। प्रदेष की विधायिका का निर्वाचन या निर्माण और कार्यप्रणाली केन्द्रीय विधायिका के ही समान है। यद्यपि इन दोनों को अपने–अपने विषयों में कानून बनाने की स्वतंत्रता प्राप्त है किन्तु कुल मिलाकर प्रदेष विधायिका के उपर केन्द्रीय विधायिका को वरीयता प्राप्त है। दूसरी बात यह भी है कि दोनों की कार्यप्रणाली तथा चुनाव प्रणाली एक समान है एवं दोनों में स्थापित व्यक्ति भी एक ही समान है अतः दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। प्रस्तावित संविधान में प्रदेष सरकार या विधायिका को समाप्त कर दिया गया है। अब अधिकारों का विभाजन करके दो स्पष्ट समूह बनेंगे। एक में सुरक्षा, वित्त, विदेष और न्याय रहेंगे तथा दूसरे में षेष सभी विभाग जो उन्हें नीचे की इकाइयॉ सौंपें। लोकसभा का चुनाव सीधा होगा और प्रत्यक्ष होगा। दूसरी इकाई का नाम संघ सभा होगा जिसका निर्वाचन क्रमषः ग्राम, जिला और प्रदेष इकाइयॉ करेंगी। लोकसभा और संघ सभा में से किसी को किसी पर वरीयता प्राप्त नहीं होगी। लोकसभा को अधिकार संविधान प्रदत्त होंगे और संघ सभा को प्रदेष सभाओं द्वारा दिये गय अधिकार होंगे।

2. अब तक के संविधान में राष्ट्रपति के निर्वाचन करने वाली इकाई की क्षमता पर षंका करते हुए यह रोक लगाई है कि यह इकाई किसी भारत से भिन्न देष के व्यक्ति को या पागल को या पैंतीस वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को राष्ट्रपति नहीं चुन सकती। मैंने ये सब प्रतिबन्ध हटाते हुए यह निर्णय संघ सभा पर छोड़ दिया है कि वह किसे अपना राष्ट्रपति चुने। परिवारों के मुखिया ग्राम पंचायत चुनेंगे। ग्राम पंचायतें, जिला पंचायत चुनेंगी। जिला पंचायतें, प्रान्त पंचायतें चुनेगी। एक सौ प्रान्त पंचायतें मिलकर 2000 सदस्यों का चयन करेंगी जो संघ सभा होगी। ऐसे लोगों पर यह षंका करना कि वे पागल या विदेषी या बालक का चुनाव कर देंगे यह मुझे अनुचित महसूस हुआ। ये लोग राजनेता भी नहीं हैं कि दलीय हित में काम करेंगे। अतः मैंने राष्ट्रपति के निर्वाचन संबंधी सभी षर्तों को हटाकर यह योग्यता संघ सभा के विवेक पर छोड़ दी है।

3. अब तक राष्ट्रपति का चुनाव लोकसभा तथा विधानसभाओं के सदस्य मिलकर करते हैं। चूंकि लोकसभा और विधानसभाओं में राजनेताओं का ही वर्चस्व है तथा राज्यसभा का निर्माण भी यही लोग करते हैं अतः राष्ट्रपति के चुनाव और भूमिका में भी राजनीति छिपी रहती है। मैंने इस चुनाव में प्रक्रिया को बदलते हुए लोकसभा और परिवार सभा (राज्यसभा) को इससे बिल्कुल अलग कर दिया है। विधान सभाऍं तो रहेंगी ही नहीं। इनके बदले में बनने वाली संघ सभा राष्ट्रपति का चुनाव करेगी। इस तरह राष्ट्रपति वास्तव में राजनीति को संतुलित करने में समर्थ हो सकेगा।

4. अब तक राज्य सभा में बारह व्यक्ति राष्ट्रपति द्वारा चुने हुए तथा षेष विधानसभओं द्वारा चुने हुए होते हैं। ये सब राजनैतिक इकाइयों द्वारा चुने हुए होतें हैं अतः इनका चरित्र भी राजनेताओं से भिन्न नहीं होता। मैंने पूरी प्रक्रिया बदल दी है। अब जो परिवार सभा होगी उसमें दस लोग राष्ट्रपति द्वारा चुने गये, दो सौ लोग प्रान्तीय सभाओं द्वारा चुने हुए तथा चालीस लोग संघ सभा द्वारा अपने बीच से चुने हुए को मिलाकर दो सौ पचास की होगी। चूंकि राष्ट्रपति भी गैर राजनैतिक प्रणाली से चुना हुआ होगा तथा प्रान्तीय सभा और संघ सभा भी गैर राजनैतिक तरीके से बनेगी अतः परिवार सभा भी पूरी तरह गैर राजनैतिक ही होगी।

5. अब तक लोकसभा क्षेत्रों के परिसीमन में आबादी की समानता को महत्व नहीं दिया गया है। प्रान्त और जिले भी असमान हैं। न इनकी संख्या समान है न ही आबादी में एक रूपता है। मैंने इसमें आबादी के आधार पर एक रूपता बनाने का प्रस्ताव किया है। मेरे प्रस्ताव अनुसार पूरे देष में एक प्रान्त, प्रत्येक प्रान्त में एक सौ जिले, तथा प्रत्येक जिले में एक सौ गांव होंगे। किसी गांव की आबादी न तो पन्द्रह सौ से अधिक होगी न पांच सौ से कम। इस तरह वर्तमान समय में गांव करीब एक हजार का, जिला एक लाख का तथा प्रदेष एक करोड़ आबादी का होगा प्रत्येक लोकसभा बीस जिलों को मिलाकर बनेगी जिसकी अनुमानित आबादी बीस लाख के करीब होगी।

6. अब तक के संविधान के अनुसार लोकसभा का चुनाव सामान्य काल में पांच वर्ष में एक साथ तथा बीच में ही भंग होने पर मध्यावधि चुनाव पांच वर्ष के लिये होगा। राज्य सभा का चुनाव प्रतिवर्ष 20 प्रतिषत सदस्यों का होगा। लोकसभा भंग हो सकती है किन्तु राज्य सभा भंग नहीं हो सकती। इस प्रक्रिया से बार बार चुनाव भी कराने पड़ते हैं तथा लोकसभा अस्थिर बनी रहती है। दूसरी ओर यदि मजबूत लोकसभा हो जाय तो वह पांच वर्ष के लिये ऐसी स्थिर हो जाती है कि बीच में उसे जनता का भय नहीं रहता। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि सरकारों ने चार वर्ष तक मनमानी चलाई और अन्तिम वर्ष को चुनाव वर्ष मानकर जनता को अपने पक्ष में करने के हिसाब से काम किये। मैंने पूरी प्रक्रिया बदल दी है। अब लोकसभा के चुनाव प्रतिवर्ष एक सौ क्षेत्रों के होंगे जो प्रत्येक प्रान्त से एक–एक क्षेत्र होगा। लोक सभा भंग नहीं होगी। इससे स्थायित्व तथा अस्थिरता दोनों ही खतरे नहीं रहेंगे। इस संषोधन के द्वारा किसी राजनैतिक दल को सरकार से इस काल्पनिक आधार पर त्यागपत्र या आन्दोलन की हवा नहीं बनानी होगी कि जनता उसके विरूद्ध है। जनता के पक्ष या विपक्ष की हवा का प्रत्यक्ष आकलन प्रतिवर्ष आसानी से हो जायेगा। इस प्रस्ताव में चुनाव आयोग पर भी एकाएक बोझ नहीं पड़ेगा और देष का चुनाव व्यय भी एक साथ नहीं होगा बल्कि चुनाव एक निरंतर चलने वाली सामान्य प्रक्रिया बनकर रह जायगी। परिवार सभा का कार्यकाल मैंने पांच वर्ष निष्चित किया है किन्तु राष्ट्रपति उसे कभी भी भंग करके चुनाव करा सकता है। यदि उसका कार्यकाल दो वर्ष का हो चुका हो। इस तरह परिवार सभा का कार्य भी अधिक सक्षम तरीके से संभव हो सकता है। लोकसभा को पांच वर्ष तक स्थिर करने से एक विषेष क्षति यह भी थी कि चुनावों के बाद कभी–कभी देष की पूरी नीति एक साथ बदलने का खतरा रहता था। विदेषी सरकारें भी पांच वर्ष में एक बार स्वयं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सक्रिय कर लेती थीं। अब प्रति वर्ष चुनाव होने से देष की नीति में एकाएक परिवर्तन के खतरे नहीं रहेंगे।

7. वर्तमान संविधान के अनुसार एक बार चुने गये लोकसभा सदस्य की सदस्यता समाप्त करने का कोई अधिकार आम नागरिकों के पास नहीं था। लोकसभा में बहुमत प्राप्त मंत्रिमंडल की सिफारिष पर राष्ट्रपति पूरी लोकसभा को भंग करके नया चुनाव करा सकते हैं। किन्तु किसी एक सदस्य की सदस्यता पर लोकसभा का भी कोई अंकुष नहीं है। पांच वर्ष तक की लोकसभा की सदस्यता निष्चित होने से एक ओर सांसद निरंकुष हो गये दूसरी ओर चुनाव के समय उक्त पद पर जीतने के लिये बहुत भारी प्रयत्न षुरू हुए क्योंकि उक्त पद अत्यन्त महत्व का बन गया। लोकसभा सदस्य का पद इतना महत्व पूर्ण हो गया कि पहले तो इसमें धनवानों ने घुसकर कब्जा किया बाद में उक्त पद प्राप्त करने में अपराधियों की सहायता लेनी षुरू हो गई और अब तो अपराधी स्वयं ही उक्त पद प्राप्त करने लगे हैं। समय समय पर इस संबंध में आवष्यकता महसूस की जाती रही कि संसद को वापस बुलाने का कोई न कोई तरीका होना चाहिये। जयप्रकाष जी ने तो अपने आंदोलन का एक मुद्दा ही वापस बुलाने का अधिकार को बनाया था किन्तु उस समय वे भी कोई तरीका नहीं सुझा सके थे। मैंने प्रस्ताव किया है कि किसी लोकसभा सदस्य के चुनाव क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले बीस जिलों में से न्यूनतम पंद्रह के साठ प्रतिषत सदस्य बैठकर साठ प्रतिषत के बहुमत से प्रस्ताव पारित करते हैं तो उक्त लोकसभा सदस्य की सदस्यता स्वयंमेव समाप्त हो जायगी। इस तरह लोकसभा सदस्य की सदस्यता पर जिला पंचायतों का परोक्ष अंकुष होगा। साथ ही चुनावों में बहुत अधिक धन या षक्ति लगाने की परंपरा समाप्त होगी क्योंकि जीतने के बाद भी पद खतरे में बना रहेगा। मेरे इस प्रस्ताव में लोक सभा सदस्य की महत्ता और चुनावों का भ्रष्टाचार कम हो जायेगा।

अब तक संविधान में यह व्यवस्था है कि संसद सदस्यों के वेतन भत्ते और सुविधाएँ संसद ही तय करेगी। मैं आज तक नहीं समझ सका कि यह कौन सा प्रजातंत्र है जिसमें कोई भी इकाई जिसे आम नागरिकों से कर वसूलने का अधिकार हो वह अपने भत्ते और सुविधाएँ स्वयं निष्चित कर सकती है। अपना वेतन स्वयं तय करने का नियम भयंकर षड़यंत्र का हिस्सा है। किन्तु संसद ने यह अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा। इसका भारी दुरुपयोग हुआ। संसद सदस्यों ने न अपने वेतन भत्ते को मंहगाई से जोड़ा और न ही आम नागरिक की क्रय षक्ति या जीवन स्तर से। इन्होंने कभी यह भी चिन्ता नहीं कि देष कितना कर्ज में डूबा है। इन्होंने बड़ी बेरहमी से अपनी सुविधाओं का विस्तार किया। अनेक सांसद अपने दिल्ली स्थित षासकीय निवास भाड़े पर लगाते हैं, टेलीफोन, रेलवे आदि के घपले तो आम बात हैं। सांसद हर मुद्दे पर दो गुटों में बँटकर बहुत झगड़ा करते हैं किन्तु वेतन भत्ते, सुविधा के प्रष्न पर पक्ष और प्रतिपक्ष एक जुट हो जाता है। मुझे याद है कि एक बार भंग होती हुई संसद ने भंग होने के तत्काल पूर्व अपने वेतन भत्ते बढ़ाकर संसद भंग कराई और प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। मैंने प्रस्ताव किया है कि इस संषोधन में संसद सदस्यों की स्वेच्छाचारिता पर अंकुष लगे।

अब तक की व्याख्या के अनुसार संसद के भीतर किये गये किसी भी आचरण पर न्यायालय विचार नहीं कर सकता। इस प्रावधान का दुरुपयोग करते हुए अनेक सांसद संसद में षक्ति प्रदर्षन किया करते हैं। भारत की प्रमुख समस्याओं का समाधान खोजने के लिये नियुक्त संवैधानिक समिति को संसद कहते हैं। अपेक्षा की जाती है कि संसद में पूरी तरह षान्तिपूर्वक विचार विमर्ष द्वारा हल निकाला जायगा। किन्तु आम तौर पर स्थिति इसके ठीक विपरीत है। संसद में विचार विमर्ष लड़ाई झगड़े से होता है और निर्णय बुद्धि की जगह हाथ पैर से। संसदीय कार्यवाही को देखकर प्रजातंत्र से घृणा होने लगती है। यह विडम्बना ही है कि व्यक्ति को कहीं भी अपने मूल अधिकार हनन के विरूद्ध न्यायालय में जाने का अधिकार है। किन्तु संसद भवन के भीतर यदि किसी सांसद के मूल अधिकार का हनन हो, उसे बोलने या अपना मत व्यक्त करने से बल पूर्वक रोक दिया जाय या संसद में किसी सांसद की हत्या भी हो जाय तो न्यायालय कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मेरे विचार में किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों के हनन की स्थिति में न्यायालय में जाने के अधिकार पर कोई रोक अनुचित है। सांसद हो जाने मात्र से व्यक्ति के मूल अधिकार समाप्त नहीं हो जाते। अतः मैंने प्रस्तावित संविधान की धारा 63 में यह व्यवस्था की है कि किसी सदस्य को यदि सदन में अपना मत व्यक्त करने या बोलने या अन्य किसी मूल अधिकार से बल पूर्वक अनाधिकृत व्यक्ति द्वारा बाधा उत्पन्न की जाती है तो वह व्यक्ति न्यायालय में जा सकता है। इस एक छोटे से संषोधन मात्र से संसद की पूरी कार्य प्रणाली बदल जायगी। संसद में गंभीर विचार विमर्ष षुरू हो सकता है तथा षक्ति प्रयोग की घटनाएं रुक सकती हैं।

प्रष्न 1. भारत में राष्ट्रपतीय प्रणाली की मांग उठ रही है। क्या राष्ट्रपतीय प्रणाली वर्तमान संसदीय प्रणाली का विकल्प नहीं है?

उत्तर दो प्रकार की षासन प्रणालियॉ हैं–

1. सुराज्य प्रधान
2. स्वराज्य प्रधान।

पहली प्रणाली में षासन मालिक होता है और जनता अनुगामी। दूसरी प्रणाली में जनता मालिक होती है और षासन व्यवस्थापक। संसदीय लोकतंत्र और राष्ट्रपतीय प्रणाली सुराज्य के ही तरीके हैं स्वराज्य के नहीं। सुराज्य प्रणाली में व्यवस्था जितनी ही केन्द्रित होगी उतनी ही सफल होगी। अतः संसदीय प्रजातंत्र की अपेक्षा राष्ट्रपतीय प्रणाली अधिक अच्छी है क्योंकि वह अधिक केन्द्रित है। संसदीय प्रजातंत्र में सुराज्य प्रणाली और स्वराज्य प्रणाली दोनों के दुर्गुण विद्यमान हैं। अतः इसे तो बदलना ही चाहिये। किन्तु मैं तो मूल रूप से स्वराज्य प्रणाली का पक्षधर हैं जिसमें केन्द्रीयकरण का कोई स्थान नहीं है। अतः मैं संसदीय प्रणाली का कोई विकल्प राष्ट्रपतीय प्रणाली की दिषा में गलत मानता हूँ। मैं तो मानता हूँ कि संसदीय प्रजातंत्र को अधिक से अधिक विकेन्द्रित कर दिया जाय जिससे न संसद की आवष्यकता रहे न राष्ट्रपति की चूँकि इतना संभव नहीं अतः मैं अधिकतम विकेन्द्रीयकरण की बात मानकर चल रहा हूँ।

प्रष्न 2. राज्य सभा का उद्देष्य लोकसभा की स्वेच्छाचारिता पर अंकुष लगाने का है। आपने राज्य सभा का चुनाव संघ द्वारा प्रस्तावित किया है। संघसभा पंचायत से बढ़ते बढ़ते अन्त में कई चरणों के चुनाव के बाद बनती है। संघ सभा की कोई संवैधानिक भूमिका या अधिकार भी नहीं है। नीचे से उपर की सभाओं को जो अधिकार और दायित्व दिये जायेंगे वही वे कर सकते हैं। संघ सभा कोई टैक्स भी नहीं लगा सकती। इस सभा के लोगों को राजनीति या संसद का कोई ज्ञान भी नहीं होता। फिर संघ सभा द्वारा चयनित परिवार सभा लोकसभा के कार्यों से कैसे सामंजस्य कर सकेगी?

उत्तर किसी भी मषीन में चेक नट का नियम यह है कि वह मषीन की चाल से विपरीत दिषा में कसा रहे। यदि चेक नट मषीन की चाल की दिषा में ही कसा रहेगा तो उसका उपयोग व्यर्थ होगा। इसी तरह यदि राज्यसभा का उपयोग लोकसभा पर अंकुष लगाने या उसकी उच्श्रृंखलता पर रोक लगाने के लिए है तो हमें उसके स्वरूप, चयन तथा कार्यप्रणाली में लोकसभा से भिन्न मार्ग चुनना होगा। यदि आठ सौ लोगों की एक लोकसभा हो या उन्हीं आठ सौ को उसी पद्धति से चुनकर दो भाग करके लोकसभा और राज्यसभा नाम दे दिया जाय तो कोई विषेष फर्क नहीं पड़ेगा। हम देख रहे हैं कि जो मुद्दा जिस ढंग से लोकसभा में उठता है उसी ढंग से राज्य सभा में भी उठता है। दोनों में समान प्रकार से पक्ष विपक्ष बने हुए हैं। लोकसभा के हारे हुए लोग राज्य सभा में और राज्यसभा के हारे हुए लोकसभा में आते रहते हैं। राजनेताओं की खाली टीम के लिये राज्यसभा और लोकसभा दो सदन बने हैं। मैंने यह सब देखकर ही राज्य सभा का नाम परिवार सभा किया है तथा उसकी चयन प्रक्रिया पूरी की पूरी क्रमबद्ध कर दी है। वह वर्तमान राजनैतिक प्रणाली से भी दूर रहेगी। इस तरह किसी भी कानून के बनवाने में दो भिन्न इकाइयॉ विचार करेंगी जिसमें एक होगी राजनेताओं की लोकसभा तथा दूसरी होगी पंचायतों की परिवार सभा।

प्रष्न 3. यदि लोक सभा की 20 प्रतिषत सीटों के चुनाव प्रतिवर्ष होंगे तो मंत्रिमण्डल कभी स्थायी नहीं रहेगा। प्रतिवर्ष उसमें बदलाव हो सकता है।

उत्तर स्थायी सरकार और अस्थायी सरकार में दोनों के ही अलग अलग गुण दोष हैं। किसी सरकार का स्थायी होना विकास की दृष्टि से उचित है किन्तु अन्याय अत्याचार की दृष्टि से घातक। दूसरी ओर किसी भी सरकार का एकाएक बदलना भी घातक होता है क्योंकि हो सकता है कि एकाएक कई महत्वपूर्ण नीतियॉ बदल जावें। मेरे प्रस्ताव से संभव है कि कोई सरकार लम्बे समय तक चलती रहे। यह भी संभव है कि एक दो वर्षों में ही उसे जनता की भावना का आभास हो जावे। फिर सरकार एकाएक न बदलकर धीरे धीरे बदलने से नीतियों में कोई भूचाल आने का खतरा नहीं रहेगा। चौथी बात यह भी है कि विपक्षी दल रोज रोज का आन्दोलन नहीं कर सकेंगे या सरकार के त्यागपत्र की मांग नहीं कर सकेंगे। इससे राजनैतिक षान्ति का वातावरण बन सकेगा।

प्रष्न 4. किसी भी लोक सभा सदस्य को उसके क्षेत्र के जिला पंचायत के सदस्य हटा सकते हैं। इससे तो जिला पंचायत की तानाषाही स्थापित हो जायेगी।

उत्तर यदि ऐसा महसूस होगा तो लोग संसद सदस्य न बनकर जिला पंचायत का चुनाव लड़ेंगे। यदि आप लोकसभा का चुनाव लड़ना जिला पंचायत से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं तो आपको यह खतरा उठाना ही होगा। लोकसभा सदस्यों की वर्तमान स्वेच्छाचारिता पर अंकुष लगाना ही चुनाव सुधारों की पहली षुरूआत है। अतः Power to recall प्रासंगिक मानना चाहिये।

भाषा

अपने मनोभाव और विचार दूसरे व्यक्ति तक ठीक उसी रूप में पहुंचाने के माध्यम को भाषा कहते हैं।

यह स्वाभाविक सिद्धान्त है कि भाषा सदा ही श्रोता की होती है वक्ता की नहीं। श्रोता वक्ता के मनोभाव को जिस भाषा में समझ सकता है वैसी ही भाषा के साथ सामंजस्य करना वक्ता की मजबूरी होती है। भाषा दो इकाइयों का इकाईगत मामला होता है। भाषा का वक्ता और श्रोता के अतिरिक्त किसी तीसरी इकाई से कोई सम्बन्ध नहीं होता। दुर्भाग्य से इकाइयों के बीच में राज्य आ जाता है। राज्य की यह मजबूरी होती है कि वह अपने स्थायित्व के लिये समाज में वर्ग–विभेद को जीवित रखे। समाज की एकता राज्य के अस्तित्व के लिये खतरा होती है। अतः राज्य या राजनीतिज्ञ समाज में धर्म, जाति, भाषा, लिंग, उम्र, और सम्पन्नता के आधार पर वर्ग–निर्माण करते रहते हैं। स्वतंत्रता के समय भारत को धर्म के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा चुका था तथा तत्काल ही कोई और वर्ग निर्माण संभव नहीं था। अतः भारत में वर्ग–भेद के उद्देष्य से भाषा को माध्यम बना लिया गया।

स्वतंत्रता के पूर्व गुलाम भारत में भाषा की कोई समस्या नहीं थी। सरकारी भाषा अंग्रेजी निष्चित थी किन्तु लोगों के इकाईगत जीवन में षासकीय हस्तक्षेप कम होने से भाषा अंग्रेजी होने के बावजूद सामान्य जीवन पर उसका कोई खास बुरा असर नहीं था। किन्तु स्वतंत्र भारत में जब षासकीय हस्तक्षेप में वृद्धि हुई और सरकारी नौकरियॉ अधिक से अधिक आकर्षक हुईं तब सरकारी सहायता का लाभ उठाने की होड़ मची। सरकारी भाषा अंग्रेजी रहे कि हिन्दी यह महत्वपूर्ण हो गया क्योंकि भाषा के आधार पर नौकरियों में अवसर की उपलब्धता होने लगी। नौकरी का लाभ उठाने की इच्छा रखने वाले उत्तर भारतीयों ने राष्ट्रभाषा के नाम पर हिन्दी का समर्थन और अंग्रेजी का विरोध षुरू कर दिया और दक्षिण भारतीयों ने इस खतरे को भांपकर हिन्दी सीखने के स्थान पर हिन्दी विरोध षुरू कर दिया। राजनीतिज्ञों को ऐसे ध्रुवीकरण से लाभ था ही। सामान्य जनता को इस विवाद से कोई विषेष लेना देना नहीं था किन्तु भाषा को रोजगार, संस्कृति, राष्ट्रीयता आदि बड़े बड़े षब्दों के साथ जोड़ दिया गया। भारतीय संविधान बनाने वालों की मंषा स्पष्ट थी कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी हो। उन्होंने संविधान में यह बात स्पष्ट लिखी भी और अंग्रेजी के प्रयोग को पंद्रह वर्षों की सीमा अवधि तक के लिये सीमित कर दिया लेकिन वहीं परन्तु लगाकर प्रावधान कर दिया कि संसद चाहे तो उक्त अवधि को बढ़ा सकती है, तथा एक आयोग अपनी रिपोर्ट देगा उस अनुसार राष्ट्रपति कार्य करेंगे। मैं संविधान बनाने वालों के इस ढुलमुल रवैये से ही अधिक परेषान हूँ। जब पंद्रह वर्ष तय कर दिये तब संसद, आयोग, समिति राष्ट्रपति आदि को बीच में घुसाने की जरूरत क्या थी? यदि संसद आवष्यक ही समझती तो संविधान संषोधन का अधिकार तो उसके पास था ही। किन्तु संविधान में इस तरह के अनेक किन्तु परन्तु लगाकर विवाद की जड़ें बो दी गईं और यही जड़ें कालान्तर में पनप कर विवाद बन गई। जिन लोगों का स्वार्थ हिन्दी के प्रयोग से टकरा रहा था उन्होंने संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत ही अपने प्रयास तेज कर दिये और हिन्दी समर्थक और हिन्दी विरोधी दो वर्ग तैयार कर दिये। इसी बीच नेहरू जी ने भाषावार प्रान्त रचना का नया कदम उठा लिया और पूरे भारत में भाषा के आधार पर प्रान्तों का विभाजन हो गया। जिन्ना ने भारत को धर्म के आधार पर बांटा था और नेहरू जी ने भाषा के आधार पर बांट दिया। भारत की एक सम्पर्क भाषा अंग्रेजी थी उसके स्थान पर हिन्दी न आकर अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ खड़ी कर दी गईं। आबादी या क्षेत्रफल के आधार पर तो प्राप्तों के विभाजन का औचित्य समझ में आता है। किन्तु, भाषा के आधार पर प्रान्तों की सीमाएं बने यह एक बेतुकी बात की गई।

प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत व्यवहार में अपनी भाषा चुनने का पूरा अधिकार है किन्तु जब उनका सम्बन्ध किसी अन्य इकाई से आता है तब वे दोनों इकाइयॉ अपनी भाषा तय कर लेंगी। किन्हीं इकाइयों के बीच आपसी व्यवहार की भाषा क्या हो यह तय करना राष्ट्र या समाज का काम नहीं। राष्ट्र अपनी षासकीय भाषा नीति बना सकता है क्योंकि वह भी एक स्वतंत्र इकाई है, किन्तु राजकाज के अतिरिक्त अन्य मामलों में व्यक्ति, परिवार, गॉव या प्रान्त अपनी भाषा तय करेंगे। यदि किसी गॉव ने अपनी भाषा मराठी तय की है तो वह उसकी ग्रामीण व्यवस्था की भाषा होगी। गॉव को कोई अधिकार नहीं है कि वह किसी परिवार को अपने पारिवारिक संव्यवहार के लिये कोई भाषा तय करे। किन्तु मैंने देखा कि अनेक हिन्दी भक्तों ने उत्तर भारत में बाजारों और दुकानों के अंग्रेजी नाम पट पोत दिये तो दक्षिण के अंग्रेजी भक्तों ने हिन्दी के विरूद्ध वही किया। लोहिया जी के षिष्यों

ने तो बाकायदा अभियान चलाकर ऐसा किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि वे ऐसा करके व्यक्ति के मूल अधिकार का हनन कर रहे हैं। इस तरह भाषा को विवाद का मुद्दा बना दिया गया।

हिन्दी भक्तों की सोच भी बहुत विचित्र है। अटल जी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में भाषण दिया और हिन्दी प्रेमियों की बहुत वाहवाही लूटी। मैं नहीं समझता कि उन्होंने कोई अच्छा काम किया। संयुक्त राष्ट्र संघ में वे अपने विचार रखने गये थे। वह वैचारिक सम्मेलन था कोई भाषा सम्मेलन नहीं था। अपनी बात सीधी समझाने और दुभाषियों द्वारा कहने में बहुत अन्तर होता है। वे यह सिद्धान्त भूल गये कि भाषा हमेषा श्रोता की होती है, वक्ता की नहीं। यदि कोई श्रोता हमारी भाषा नहीं जानता है तो उसे इषारे से भी समझाना पड़ता है। किन्तु अटल जी ने अनदेखी करके अपनी भाषा स्वयं तय की जबकि भाषा श्रोताओं के आधार पर तय करनी चाहिये थी। मैं सरगुजा जिले की पदयात्रा पर गया तो बिहार से सटे क्षेत्रों में बिहारी, सरगुजा के दक्षिणी भाग में सरगुजिहा तथा षहरों में हिन्दी में विचार रखे क्योंकि श्रोताओं के आधार पर ही भाषा तय करनी थी। मैं समझता हूँ कि हिन्दी भाषियों ने भी अंग्रेजी हटाओं के नाम पर अनावष्यक विवाद पैदा करने की कोषिष की। अब धीरे धीरे भाषा के विवाद समाप्त हो रहे हैं। सिनेमा ने हिन्दी स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी तीव्र गति से बढ़ी है तथा कालान्तर में अपने आप स्थापित हो जायगी।

मैंने प्रस्तावित संविधान में व्यवस्था की है कि भारत सरकार की कामकाज की भाषा हिन्दी होगी। संसद यदि चाहे तो हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकती है। संसद में कोई सदस्य किसी भाषा में बोल सकता है किन्तु उसका अनुवाद नहीं होगा। अर्थात् संसद सदस्य को हिन्दी या दूसरी निष्चित की गई भाषा तक सीमित रहना होगा। विदेषों से पत्र व्यवहार किसी भाषा में हो सकता है। सरकारी काम काज के अतिरिक्त सबको अपनी अपनी भाषा चुनने का अधिकार होगा। इस तरह हिन्दी राजभाषा हो जायगी। भाषा को भारतीय संस्कृति राष्ट्रभाषा आदि षब्दों से मुक्ति मिल जायगी।

प्रष्न 1. संसद में दो के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा के अनुवाद की व्यवस्था नहीं होगी। तब उसके बोलने का क्या उपयोग होगा?

उत्तर संसद में प्रत्येक सांसद के अनुवाद की व्यवस्था हो उस पर भारी भरकम खर्च किया जाय और वह खर्च आम जनता से वसूला जाय यह गलत है। संसद के खर्च की एक सीमा होनी चाहिये। भाषा के नाम पर इस तरह खर्च करना संभव नहीं। अतः सांसद को हिन्दी सीखनी चाहिये। न सीख सके तो दूसरी भाषा का प्रयोग करें। वह भी न कर सके तो लिखित अनुवाद सदस्यों में वितरित करे दे और वह भी संभव न हो तो स्वयं खर्च की व्यवस्था करे या संसद सदस्य न बने। लेकिन सुरक्षा और न्याय जैसे अनिवार्य खर्चों में कटौती करके सदस्यों की भाषा सम्बन्धी इच्छा पूर्ति पर खर्च करना उचित नहीं है।

प्रष्न 2. आपने हिन्दी के अतिरिक्त कोई एक अन्य भाषा चुनने का अधिकार संसद को दिया है। यदि उन्होंने कोई विदेषी भाषा चुन ली तब क्या होगा?

उत्तर संसद अपनी भाषा चुनने के लिये स्वतंत्र है। संसद आपके काम काज की भाषा में हस्तक्षेप नहीं कर सकती और आप भी संसद की काम काज की भाषा में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। भाषा को स्वदेषी और विरोधी कहना गलत है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है। इससे आगे भाषा को भावना के साथ जोड़ना अनावष्यक है।

विदेष

व्यक्ति व्यवस्था की पहली इकाई होता है और समाज अन्तिम। ये दोनों मूल इकाइयॉ होती हैं। परिवार, गॉव, जिला, प्रान्त आदि इकाइयॉ इन दोनों के बीच व्यवस्था की होती है। समाज का प्रतिनिधित्व विष्व करता है। विष्व की कोई निष्चित और अधिकार सम्पन्न व्यवस्था अब तक नहीं बन सकी है। अतः राष्ट्र ही अन्तिम इकाई के रूप में स्थापित है। जब तक विष्व व्यवस्था और विष्व–सरकार नहीं बनती तब तक के लिये राष्ट्र की सीमाऍं अन्तिम सीमाऍं होती है तथा राष्ट्र की सीमाओं के बाहर की व्यवस्था, भूमि, रहन, सहन या अन्य सबको विदेष और विदेषी कहते हैं। यद्यपि राष्ट्र अन्तिम इकाई है, किन्तु राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से बिल्कुल अलग थलग नहीं रह सकता। अनेक मामलों में बाहरी राष्ट्रों से कुछ न कुछ संबंध जुड़ता ही है। अतः प्रत्येक राष्ट्र के विदेषों से संबंध होते हैं। विष्व–व्यवस्था के अभाव के कारण ही व्यक्ति के मूल अधिकारों की अन्तिम सीमा राष्ट्र तक होती है। राष्ट्र के भीतर तक ही वह व्यक्ति रहता है और बाहर जाते ही व्यक्ति समाप्त होकर सिर्फ नागरिक रह जाता है।

भले ही राष्ट्र व्यवस्था की अन्तिम इकाई है, किन्तु अन्ततोगत्वा उसे विष्व व्यवस्था में विलीन होना ही है। अतः राष्ट्र को अपनी नीतियॉ बनाते समय विष्व–व्यवस्था के संभावित प्रारूप के साथ तालमेल बनाना चाहिये। राष्ट्र को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जो विष्व व्यवस्था में बाधक सिद्ध हो। इसी प्रकार भारत की भी विदेष नीति होनी चाहिये थी। किन्तु भारत भी अन्य देषों के समान ही दूसरे देषों की आन्तरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करता रहा। जिस तरह पाकिस्तान कष्मीर में तथा चीन कम्यूनिष्टों के माध्यम से भारत में विद्रोह को हवा देता रहा, वही भूल भारत भी पाकिस्तान, चीन, भारत, सबने राष्ट्र व्यवस्था को नुकसान पहुँचाया। राष्ट्र को अन्तिम इकाई मानने की भावना जितनी जल्दी खतम हो, राष्ट्र की अमेद्य दीवारें जितनी जल्दी टूटें उतनी जल्दी विष्व–व्यवस्था स्थापित हो सकती है और जय जगत सार्थक हो सकता है किन्तु राष्ट्रवाद, स्वदेषी आदि षब्द इसमें निरंतर बाधक बनकर राष्ट्र की दीवारों को मजबूत कर रहे हैं। स्वदेषी का अर्थ स्थानीय तो सार्थक हो सकता है किन्तु भारतीय नहीं। अतः विदेष नीति में दो महत्वपूर्ण संवैधानिक संषोधन मैंने प्रस्तावित किये हैं।

1. अब तक संवैधानिक प्रावधान ऐसे हैं कि सरकार को विदेषों से व्यवहार के संबंध में सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त है। यहां तक कि युद्ध तक का निर्णय सरकार कर सकती है। सरकार जब जैसा समझौता करे, उसे पूरा अधिकार है। मैंने इसे राष्ट्रवाद से उपर विष्व सरकार की ओर थोड़ा सा आगे बढ़ाते हुए प्रावधान किया है कि किसी अन्य देष से विवाद की स्थिति में भारत सरकार तथा संसद पंच फैसला या संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय को स्वीकार करेगी। यदि सरकार किसी निर्णय को स्वीकार नहीं करना चाहती है तो उक्त मुद्दे पर संसद, संघ–सभा तथा संविधान–सभा पृथक–पृथक सर्वसम्मति से अस्वीकार भी कर सकती हैं। इस संषोधन द्वारा संयुक्तराष्ट्र संघ या पंच फैसले को अस्वीकार करना बहुत कठिन हो जायगा तथा संसद के साथ संघ–सभा तथा संविधान–सभा की भी सहमति आवष्यक हो जायगी। यह कदम राष्ट्रवाद की दीवारों को कमजोर करेगा तथा विष्व–व्यवस्था की ओर एक क्रान्तिकारी कदम सिद्ध होगा।

2. अब तक विदेषी षक्तियॉ भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करती रही हैं। विदेषी सामान तस्करी से तथा विदेषी घुस पैठिये छिपकर भारत में प्रवेष कर जाते हैं। सरकार इन्हें रोक नहीं पाती। मैंने स्वयं जाकर कई सीमाओं को देखा है जहॉ भारत की आबादी और अन्य देषों की आबादी इतनी सटी हुई है कि रोकना लगभग असंभव है। मैंने राष्ट्रीय अस्थिरता को रोकने के उद्देष्य से यह प्रावधान किया है कि भारत की सीमाओं का पंद्रह किलोमीटर का भू–भाग सरकार की व्यवस्था तथा स्वामित्व का होगा। इस संषोधन के आधार पर उक्त पंद्रह किलोमीटर के क्षेत्र में या तो कोई नागरिक नहीं रहेंगे या यदि रहेंगे तो उनके कोई मौलिक अधिकार नहीं होंगे। वहॉ न कोई इकाई काम करेगी न इकाई की व्यवस्था। पूरी तरह सैनिक षासन होगा या केन्द्र सरकार जैसे चाहे वैसे उसकी व्यवस्था करेगी। इस संषोधन के आधार पर विदेषी हस्तक्षेप पर सक्षम नियंत्रण संभव हो सकता है।

प्रष्न 1. संयुक्त राष्ट्र संघ या पंच फैसले की बात सरकार को अनिवार्य रूप से मानने का प्रावधान घातक होगा?

उत्तर मैंने ऐसा नहीं किया है। मैंने तो सिर्फ यही किया है कि यदि अस्वीकार करना हो तो संसद अकेले फैसला न लेकर संघ–सभा और संविधान–सभा को भी सहमत करेगी।

प्रष्न 2. यदि संघ–सभा या संविधान सभा सहमत नहीं हुई तब क्या होगा?

उत्तर तब संसद उक्त फैसले को मानेगी। अब तक हम गुलाम मानसिकता में जी रहे हैं। हमारी भावना ही ऐसी बन गई है कि संसद में बैठने वाला ही एकमात्र बुद्धिमान और राष्ट्रीय सामाजिक विचारों से ओत प्रोत होता है। अन्य सब लोग न तो समझ सकते है न ही समझने में सक्षम हैं। मेरे विचार में यह बात पूर्णतः निराधार है। संसद में यदि योग्य लोग हैं तो संविधान–सभा और संघ–सभा में उनसे कम योग्य लोग नहीं। संसद इन दोनों सभाओं को सहमत क्यों नहीं कर सकती? मेरे विचार में युद्ध जैसा खतरनाक फैसला सिर्फ राजनीतिज्ञों पर छोड़ना उचित नहीं। अतः संसद के निर्णय पर संघ–सभा और संविधान–सभा का अंकुष उचित समझा गया।

प्रष्न 3. आपने भारतीय सीमा के पंद्रह किमी क्षेत्र को सैनिक षासन के अन्तर्गत कर दिया है। वहां बसे लोगों का क्या होगा?

उत्तर– वे लोग अपनी सम्पत्ति का मुआवजा लेकर कहीं भी बस सकते हैं अथवा यदि वहीं रहना हो तो षासकीय सहमति से वहॉ रह सकते हैं। यदि संभव और आवष्यक हुआ तो ऐसे षहरों को तीन तरफ से इतना मजबूत घेरा बनाया जा सकता है कि उक्त षहर सिर्फ भारत की ओर ही खुला रहे और वहां भी पंद्रह किलो मीटर छोड़कर। या और भी नियम सोचे जा सकते हैं किन्तु किसी को सिर्फ उतने ही अधिकार हो सकते हैं जो संसद या सरकार उन्हें दे उससे अधिक नहीं।

चुनाव प्रणाली का स्वरूप

किसी भी इकाई की आन्तरिक व्यवस्था के लिये कुछ लोगों को विषेष अधिकार प्रदान करने होते हैं। ऐसे अधिकार प्रदान करने वाले लोगों की संख्या यदि बहुत कम हो तो वे अधिकार पाने वालों का चयन करते हैं किन्तु यदि ऐसे लोग अधिक हैं तो अनौपचारिक चयन प्रक्रिया सफल नहीं होती है बल्कि चुनाव होता है। कोई भी चयन बिना मतदान के भी संभव है किन्तु कोई भी चुनाव बिना मतदान के संभव नहीं यदि उस योग्यता के लिये एक से अधिक उम्मीदवार हों। इस तरह किसी भी व्यवस्था में चुनाव बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। चुनाव की दोषपूर्ण प्रक्रिया व्यवस्था के परिणामों पर गंभीर असर डालती है। अतः चुनाव प्रक्रिया तथा चुनाव सम्पन्न कराने वाली इकाई को सक्षम, विष्वसनीय तथा पारदर्षी होना चाहिये।

वर्तमान स्थिति में व्यवस्था की केन्द्रित प्रणाली होने से चुनाव और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गये हैं। अधिकार केन्द्रित होने से धीरे धीरे पदों का महत्व बढ़ता चला गया तथा पद ही धन और सम्मान प्राप्ति के प्रमुख आधार बन गये। पद प्राप्ति का आधार बना चुनाव। अतः चुनाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गये। धीरे धीरे चुनावों में धन, पद, षक्ति और अन्त में आपराधिक प्रयास भी षामिल हो गये। संसद और विधान सभाओं में ज्ञान और त्याग अपवाद हो गया। अब तो स्थिति इतनी खराब है कि जिन अपराधियों को जेलों में बन्द होना चाहिये था उनमें से अनेक संसद में या तो स्वयं बैठे हैं या अपने प्रतिनिधि बिठाकर रखे हैं। न्यायालय अपराधियों की पहचान करने में विफल है। इस कारण अपराधियों को चुनावों में धन बल और बाहुबल को सफलता के पूरे अवसर उपलब्ध होने से षराफत चुनावों से परे हो गई। अब चुनाव धनबल और बाहुबल के ही सहारे लड़े और जीते जाते हैं। धनबल और बाहुबल के आधार पर जीतने वाले संसद में बैठकर भारत के आम नागरिकों के भाग्य का निर्णय करते हैं। कल्पना की जा सकती है कि इसके परिणाम कैसे होंगे।

यदि अधिकार केन्द्रित सुराज्य प्रणाली को मूल में रखकर भारत की व्यवस्था करनी होती तो मैं वर्तमान चुनाव प्रणाली के स्थान पर यह प्रस्तावित करता कि लोकसभा की आधी सीटें वर्तमान प्रणाली के आधार पर भरी जानी चाहिये किन्तु चूॅकि मैं व्यवस्था के मूल में ही अधिकार विकेन्द्रित स्वराज्य प्रणाली को आधार मानकर चल रहा हूॅ अतः चुनाव अलाभकर तथा इतने अनाकर्षक हो जायेंगे कि धनबल और बाहुबल अपने आप उनसे दूर हो जायगा। जब चुनावों के माध्यम से कोई बहुत बड़ी ताकत ही हाथ में नहीं आने वाली है तो कोई चुनावों में क्यों धन खर्च करेगा या प्राणों को खतरे में डालेगा? फिर मैंने यह भी प्रस्ताव किया है कि सांसद को उसके क्षेत्र के जिला पंचायत के सदस्य मिलकर वापस बुला सकते हैं। इस प्रस्ताव से तो चुनावों का महत्व और भी अधिक कम हो जायगा। अतः आज की अपेक्षा एक बहुत कम महत्वपूर्ण संसद और उसके कारण हो चुके बहुत कम महत्वपूर्ण चुनावों की कल्पना के आधार पर ही मैंने चुनाव प्रणाली में बहुत मौलिक परिवर्तन नहीं किये हैं। फिर भी मेरे परिवर्तित सुझाव इस प्रकार हैं–

1. परिवार से लेकर संसद तथा राष्ट्रपति तक के चुनाव, चुनाव आयोग के अधीन होंगे यह व्यवस्था इसीलिये की गई है कि पारदर्षिता और निष्पक्षता बनी रहे।
2. संविधान में उल्लेखित को छोड़कर प्रत्येक इकाई अपनी चुनाव प्रणाली का चयन करने के लिये स्वतंत्र होगी। इस संषोधन के माध्यम से उपर वाली इकाई को नीचे वाली इकाई के चुनाव या चुनाव प्रणाली में हस्तक्षेप करने की आवष्यकता नहीं रहेगी। संसद अपने चुनाव की चुनाव प्रणाली तय करके चुनाव आयोग को देगी और परिवार या ग्राम सभा अपने चुनाव की। हो सकता है कि दो परिवार अपने अपने चुनाव दो अलग अलग तरीकों से सम्पादित करें। इस तरह इकाइयों की इकाईगत स्वतंत्रता मजबूत होगी।
3. किसी भी चुनाव में मतदान गुप्त होगा। प्रत्यक्ष रूप से सर्व सम्मति होने के बाद भी चुनाव आयोग गुप्त मतदान द्वारा सर्वसम्मति या सहमति की पुष्टि करेगा। इस संषोधन का बहुत व्यापक महत्व है। अब किसी तरह सर्वसम्मति का महत्व नहीं रह जायगा। यदि कुल मिलाकर एक ही उम्मीदवार है तब भी उसे गुप्त मतदान द्वारा सहमति की मुहर लगवानी आवष्यक है। इस संषोधन से परिवारों या गांवों में दादागिरी घटेगी, घुटन समाप्त होगी। हो सकता है कि प्रारंभ में इसके कारण कुछ टूटन हो किन्तु घुटन की अपेक्षा टूटन अल्पकालिक होगी।
4. किसी भी चुनाव में कुल वैध मतदान का आधे से अधिक मत प्राप्त करना आवष्यक होगा। अभी तो स्थिति यह है कि कुल मतों का 10 प्रतिषत मत पाने वाला भी जीत जाता है भले ही 90 प्रतिषत लोग उसे न चाहें। अब वैसा नहीं होगा। यदि अकेला उम्मीदवार भी आधे से कम मत प्राप्त करता है तो उसका चुनाव नहीं हो सकेगा। यदि कई उम्मीदवारों में से कोई आधे से अधिक मत नहीं पा सकते तो उपर वाले मत पाने वाले दो सदस्यों के बीच पुनः मतदान कराया जायगा।
5. परिवार के मुखिया का चयन परिवार के सदस्य करेंगे तथा परिवार से उपर ग्राम सभा या संसद के चुनावों में परिवार का मुखिया ही मतदान करेगा जिसका मत उसके परिवार की सदस्य संख्या के आधार पर गिना जायगा। यह संषोधन भी बहुत क्रान्तिकारी है। इस संषोधन से चुनावों में मतदान की गुणवत्ता भी बढ़ेगी तथा खर्च भी घटेगा।

प्रष्न 1. सर्वसम्मति होने के बाद भी मतदान की अनिवार्यता उचित नहीं।

उत्तर घुटन और टूटन के बीच मैंने घुटन को अधिक खतरनाक माना है।

आज परिवार के टूटने का प्रमुख कारण है घुटन। यदि सर्वसम्मति वास्तविक है तो फिर सब लोग अपनी सहमति पर गुप्त मतदान द्वारा मुहर लगा दें इससे क्या नुकसान है? यदि सर्वसम्मति दबाव या लिहाज से प्राप्त की गई है तो ऐसी सर्वसम्मति चुनाव से अधिक घातक होगी। यदि हम राष्ट्रीय और विष्व स्तर पर स्वराज्य या लोकतंत्र को सफल देखना चाहते हैं तो हमें परिवारों से ही स्वराज्य या लोकतंत्र की षुरूआत करनी होगी। परिवारों में तानाषाही और दुनिया में स्वराज्य सफल नहीं होगा।

प्रष्न 2. परिवार के सभी सदस्य लोकसभा चुनाव में मत नहीं देंगे बल्कि सिर्फ मुखिया ही वोट देगा या उचित नहीं?

उत्तर वर्तमान प्रणाली में यह उचित नहीं दिखता क्योंकि चुनावों के द्वारा हम अपना षासक चुनते हैं। किन्तु स्वराज्य व्यवस्था में कोई दिक्कत नहीं होगी। हम अपना सांसद चुनते हैं और सांसद राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री चुनते हैं तब तो यह मांग नहीं उठती कि सब लोग वोट दें। मैंने यदि यह व्यवस्था कर दी कि परिवार के लोग मुखिया चुनेंगे और मुखिया सांसद चुनेगा तो क्या बहुत बड़ी दिक्कत आ गई? हम अपने सुरक्षा व्यय में कटौती करके चुनाव खर्च बढ़ाये यह उचित नहीं। चुनाव व्यय की भी एक सीमा आवष्यक है। अतः खर्च कम करने तथा गुणवता बढ़ाने के लिये यह प्रावधान

किया गया है। फिर **Power to recall** तथा आधे से अधिक वोट प्राप्त करने की अनिवार्यता चुनावों में कभी कभी दुबारा मतदान की स्थिति पैदा कर सकती है। अतः कम खर्चीली व्यवस्था आवष्यक प्रतीत हुई।

प्रष्न 3. चुनाव की पद्धति इकाई तय करेगी। यह पद्धति भी विवादास्पद होगी। चुनाव आयोग को भारी कठिनाई होगी?

उत्तर संविधान के अन्तर्गत उल्लेखित चुनाव प्रक्रिया तो संसद तय करेगी। अन्य सामान्य नियम इकाइयॉ बना सकती हैं। कोई गॉव या परिवार किसी भी तरीके से अपना मुखिया चुन ले इससे क्या फर्क पड़ता है? चुनाव आयोग अपनी नियत तारीख को ऐसे निर्वाचित मुखिया की गुप्त मतदान प्रणाली से परीक्षा लेकर मुहर लगायेगा। यह गुप्त मतदान प्रक्रिया संसद तय करेगी।

आपातकाल

समाज में व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व राज्य का होता है। राज्य को नियंत्रित करने हेतु संविधान होता है और संविधान के अन्तर्गत बनी संसद कानून बनाती है। इस तरह समाज में कानून का षासन माना जाता है। जब राज्य की नीतियों को सामान्य चुनौती हो तो उस समय को सामान्य काल माना जाता है। सामान्य काल में राज्य का प्रयास होता है कि आम नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों में किसी प्रकार की कटौती किये बिना ही व्यवस्था ठीक ढंग से चलती रहे किन्तु जब राज्य की नीतियों को सक्षम तरीके से चुनौती होती है तब ऐसे विषेष समय के लिये राज्य को कुछ विषेष अधिकार प्रदान किये जाते हैं। ऐसे समय को आपातकाल कहते हैं। आपातकाल में राज्य को कुछ ऐसे विषेष अधिकार दिये जाते हैं जो सामान्यकाल बनाने में सहायक हों। स्वाभाविक ही है कि आपातकाल में सामान्य नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों में आपातकाल की गंभीरता के अनुसार कटौती होती है।

आपातकाल की परिस्थितियॉ तीन प्रकार की होती हैं।

1. जब विदेषी आक्रमण का खतरा हो।
2. जब स्थानीय अपराधी षक्तिषाली हो गये हों।
3. जब आर्थिक असमानता बहुत अधिक हो गई हो।

वर्तमान समय में भारत के समक्ष विदेषी आक्रमण का कोई तात्कालिक खतरा प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु भारत के अनेक क्षेत्रों में स्थानीय अपराधियों का मनोबल बहुत उॅचा है। भारत के सीमावर्ती राज्य कष्मीर, नागालैण्ड, मणिपुर आदि विदेषियों की सहायता से संचालित गिरोहों से आक्रान्त हैं तो बिहार, उत्तरप्रदेष, मध्यप्रदेष का कुछ भाग तथा अन्य प्रान्तों में भी कहीं कहीं अपराधी तत्व इतना मजबूत है कि आम लोगों का मनोबल पूरी तरह टूटा हुआ है। अनेक स्थानों पर तो प्रषासन पर आम नागरिकों का विष्वास इस तरह उठ गया है कि लोग रिपोर्ट करने या गवाही देने से डरने लगे हैं। इसी तरह आन्ध्र प्रदेष, मध्य प्रदेष, बंगाल तथा बिहार प्रान्त में प्रषासन के विरूद्ध सषस्त्र संघर्ष षुरू हो गया है जिसे नक्सलवाद कहते हैं। नक्सलवाद प्रभावित क्षेत्रों की जनता कानून और न्याय के बीच बुरी तरह पिस रही है। सरकार बन्दूक के जोर पर कानून का राज्य स्थापित करना चाहती है और नक्सलवादी बन्दूक के जोर पर न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं इस तरह आधे से अधिक भारत आन्तरिक आपातकाल की चपेट में है, भले ही इसकी घोषणा न हुई हो।

तीसरे प्रकार का आपातकाल सम्पूर्ण भारत में समान रूप से विद्यमान है। श्रम का मूल्य और महत्व नगण्य है। बुद्धि की उत्पादन क्षमता बहुत तीव्र है। बुद्धि प्रधान लोग श्रम के षोषण में पूरी तरह सफल हैं। धन की उत्पादन क्षमता तो असीमित हैं। बुद्धि और धन ने मिलकर आर्थिक असमानता का ऐसा वीभत्स स्तर बना दिया है कि वह अमानवीय हो गया हैं। धन सम्पन्न और धन हीन के बीच सुख सुविधा, क्षमता तथा सम्पन्नता का अन्तर निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। गरीब आदमी कछुए की रफ्तार से आगे बढ़ रहा है और धनवान व्यक्ति हवाई जहाज की रफतार से। स्थिति इतनी खराब है कि धनवान व्यक्ति अपने धन के बल पर राजनीति तथा न्याय को भी प्रभावित कर रहा है। इस तरह सम्पूर्ण भारत में आर्थिक आपातकाल तथा अधिकांष भारत में आन्तरिक सुरक्षा के आपातकाल की परिस्थितियॉ पूरी तरह विद्यमान हैं।

मैंने इस संबंध में निम्न प्रावधान किये हैं–

1. अभी संविधान में यह प्रावधान है कि युद्ध बाह्य आक्रमण या सषस्त्र विद्रोह की स्थिति में सरकार राष्ट्रपति से आपातकाल घोषित करा सकती है। आपातकाल की घोषणा करते समय सरकार को पूरी स्वतंत्रता है किन्तु एक माह के अन्दर ऐसे आपातकाल को संसद की स्वीकृति मिलनी चाहिये। इस तरह संसद और सरकार को मिलाकर आपातकाल की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। सन् 1975 में श्रीमती गांधी इसी प्रावधान के सहारे तानाषाह बन गई थीं। ऐसा आपातकाल घोषित होने के बाद केन्द्र सरकार को प्रदेष की सभी षक्तियों पर वरीयता प्राप्त हो जायेगी। ऐसे आपातकाल के समय मौलिक अधिकार भी निलंबित रहेंगे। यहां तक कि श्रीमती गांधी के आपातकाल के समय कई संसद सदस्यों को भी जेल में बिना कारण बताये बन्द किया गया था तथा न्यायालय में भी यह बहस चल पड़ी थी कि किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताये सरकार किसी सीमा तक दण्ड दे सकती है। मैंने ऐसे प्रावधान का असंगत मानते हुए यह संषोधन किया है कि आपातकाल का कोई भी आदेष उपराष्ट्रपति तथा मुख्य न्यायधीष की सहमति के बिना नहीं लगाया जा सकता। साथ ही आपातकाल के समय राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा मुख्य न्यायधीष मिलकर ही षासन व्यवस्था के प्रावधान लागू कर सकेंगे। इस तरह मैंने मंत्रिमण्डल के एकपक्षीय अधिकार पर मुख्य न्यायाधीष तथा उपराष्ट्रपति का अंकुष लगा दिया है। साथ ही मैंने प्रावधान किया है कि आपातकाल के समय भी सरकार मूल अधिकारों को समाप्त नहीं कर सकती बल्कि सिर्फ इतना ही कर सकती है कि सम्पत्ति पर 10 प्रतिषत का अतिरिक्त कर लगाकर अपनी आवष्यकता की पूर्ति करे। किन्तु जबरन भर्ती या विचार–अभिव्यक्ति, स्वःनिर्णय आदि पर कोई रोक या कटौती नहीं कर सकती। इस तरह मैंने आपातकाल की पैनीधार को भोथरा करने का प्रयास किया है।
2. आंतरिक आपातकाल के संबंध में अब तक संविधान में यह प्रावधान है कि सरकार जब चाहे किसी भी व्यक्ति को बिना तत्काल कारण बताये जेल में बन्द कर सकती है। ऐसे व्यक्ति के जेल में बन्द होने की समीक्षा न्यायाधीषों की टीम तीन माह में करेगी। संसद को यह अधिकार है कि वह इस तरह निरुद्ध करने की प्रक्रिया में कोई भी संषोधन कर सकती है। इस तरह सरकार को तीन माह तक के लिये तथा संसद को असीमित काल तक किसी व्यक्ति को जेल में रखने के असीमित अधिकार प्राप्त हैं। इन अधिकारों के लिये न आपातकाल की समीक्षा की आवष्यकता है न ही घोषणा की। ये आपातकालीन और विलक्षण अधिकार तो सरकार और संसद को सामान्यकाल में ही प्राप्त हैं। कौन नहीं जानता कि सरकार या उसके उच्च अधिकारियों ने इन प्रावधानों का कितना दुरुपयोग किया है। बिडम्बना ही है कि ऐसे कठोर प्रावधानों के होते हुए भी अपराधियों के मन में कानून का डर नहीं है और आम आदमी बिना कानून तोड़े भी अधिकारियों से भयभीत है। मैंने उक्त प्रावधान को समाप्त करते हुए व्यवस्था की है कि किसी भी जिले का कलेक्टर, एस. पी. और जिला एवं सत्र न्यायाधीष यदि यह महसूस करते हैं कि उनके जिले में अपराधियों के डर के कारण न्याय बाधित हो रहा है तो ये तीनों मिलकर उक्त जिले में आपातकाल घोषित कर सकते हैं। ऐसे आपातकाल घोषित जिले में गुप्तचर पुलिस को यह अधिकार होगा कि वह किसी व्यक्ति के विरुद्ध जिला व सत्र न्यायालय में गुप्त मुकदमा प्रस्तुत कर सकेगी जिसकी जांच उक्त न्यायालय की गुप्तचर एजेंसी करेगी तथा तद्नुसार ही उक्त व्यक्ति को सजा दी जा सकेगी। उक्त आदेष की सम्पूर्ण सुनवाई की, एस. पी., कलेक्टर या सरकार को न कोई जानकारी होगी न ही हस्तक्षेप। सम्पूर्ण कार्यवाही बिना अभियुक्त की जानकारी के गुप्त रूप से होगी और यदि न्यायालय आदेष देगा तभी सरकार किसी को निरुद्ध कर सकेगी। कोई व्यक्ति ऐसे आदेष के विरुद्ध अपील करेगा तो उच्च न्यायालय की गुप्तचर इकाई पुनः नये सिरे से जांच करके निर्णय करेगी। इस तरह सरकार संसद तथा सरकारी कर्मचारियों की मनमानी पर भी रोक लगेगी तथा

अपराधियों के मन में भी यह भय बनेगा कि उनके अपराधों की गुप्त समीक्षा संभव है। मेरे विचार से इस प्रावधान से एक तरफ तो अपराधियों का मनोबल टूटेगा दूसरी ओर सरकार और उसके अधिकारियों की भी मनमानी रुकेगी।

3. आर्थिक आपातकाल की अब तक बहुत भ्रामक परिभाषा विद्यमान है। अब तक संविधान में ऐसी व्यवस्था है कि यदि राज्य की वित्तीय स्थिति असंतुलित हो जाती है तो राज्य आर्थिक आपातकाल घोषित करके वित्तीय व्यय में कटौती कर सकता है तथा अपने कर्मचारियों के वेतन भत्ते कम कर सकता है या रोक सकता है। मेरे विचार में यह प्रावधान अनावष्यक भी है और अनुचित भी। राज्य को यह अधिकार तो स्वाभाविक रूप से प्राप्त है कि वह कभी भी कोई टैक्स लगा सके, अपने खर्च में कटौती कर सके। राज्य का यह भी स्वाभाविक अधिकार है कि वह अनुबंधित अवधि के बाद वेतन भत्ते में कटौती कर सकता है। संविधान में यह बात अनावष्यक रूप से छुपाई गई है कि राज्य अपने कर्मचारियों का वेतन भत्ता कभी भी कम नहीं कर सकता। यदि मूल्य वृद्धि के आधार पर वेतन बढ़ाया जा सकता है तो मूल्य हास के आधार पर घटाया भी जाना चाहिये। फिर यह भी गलत है आपातकाल में राज्य किये हुए काम का भी वेतन रोक सकता है। मैंने राज्य को आर्थिक स्थिति के आधार पर नहीं बनाया है क्योंकि राज्य राष्ट्र का प्रतिरूप नहीं है बल्कि प्रतिनिधि मात्र है। राज्य अपने आर्थिक संकट के लिये स्वयं ही आपातकाल लगा दे और स्वयं ही वेतन भत्ते रोक दे यह अनुचित है। अतः मैंने आर्थिक आपातकाल को आर्थिक असमानता के साथ जोड़ते हुए प्रावधान किया है कि यदि राज्य महसूस करे कि समाज में आर्थिक असमानता बहुत बढ़ गई है या बढ़ रही है तो राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति की सलाह से पूरे देष में आर्थिक आपातकाल की घोषणा कर सकता है। इस घोषणा के अन्तर्गत भारत की सम्पूर्ण चल अचल सम्पत्ति पर 2 प्रतिषत तक आपातकर लगाकर उससे प्राप्त सम्पूर्ण धन भारत के प्रत्येक नागरिक के बीच समान रूप से वितरीत कर दिया जायेगा। यह प्रक्रिया वर्ष में एक बार ही हो सकती है। इस प्रक्रिया से आर्थिक असमानता, चाहे कितनी भी अधिक हो, एक या दो वर्षों में ही नियंत्रित हो सकती है।

प्रष्न 1. युद्ध अथवा सषस्त्र विद्रोह के समय राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधीष विचार करें यह लम्बी प्रक्रिया घातक हो सकती है?

उत्तर ऐसे संवेदनषील समय में पूरा मंत्रिमण्डल विचार करेगा तथा यह घातक नहीं होगा यह समझ से परे हैं। युद्ध जैसे निर्णय किसी एक इकाई पर छोड़ना उचित नहीं है। अतः युद्ध जैसे मामलों में उपराष्ट्रपति तथा मुख्य न्यायाधीष को सम्मिलित करना आवष्यक समझा गया।

प्रष्न 2. युद्ध जैसे आपातकाल में भी आम नागरिकों के मूल अधिकार निलंबित नहीं करना खतरनाक हो सकता है। कोई सैनिक ठीक समय पर युद्ध से इन्कार कर दें अथवा कोई नागरिक युद्धकाल में भारत के विरुद्ध अपनी बात करने लगे अथवा युद्धकाल में सैनिकों की कमी हो जाये और नागरिक स्वेच्छा से युद्ध हेतु न तैयार हो तब क्या स्थिति होगी?

उत्तर आपने स्थिति का एक पक्ष ही रखा है। युद्धकाल में भी यदि नागरिक के जीने के, अभिव्यक्ति के तथा स्वनिर्णय के अधिकार पर कोई अंकुष लगा तो वह घातक होगा। इससे राज्य मजबूत हो जायेगा। युद्ध का निर्णय भारत के आम नागरिकों को नहीं है बल्कि राज्य का है। यदि राज्य का निर्णय गलत है तो आम नागरिकों का यह अधिकार है कि वे उसका विरोध करें भले ही वह युद्धकाल ही क्यों न हो। आम नागरिकों पर युद्ध थोपना और युद्धकाल में नागरिकों के मूल अधिकार निलंबित करने का अधिकार राजनेताओं के पास से हटा दिया जाये तो दुनिया में होने वाले युद्धों में से आधे से अधिक युद्ध नहीं होंगे। फिर हमने आपातकाल में सम्पत्ति पर अधिकतम 10 प्रतिषत तक कर लगाने के अधिकार तो राज्य को दे ही दिये हैं। इससे अधिक अधिकार देना घातक होगा। यह बात आवष्यक है कि सैनिक का मूल अधिकार नहीं होता क्योंकि वह तो राज्य के साथ किसी अनुबंध के अन्तर्गत काम कर रहा है। सैनिक अपना अनुबंध तोड़ नहीं सकता।

प्रष्न 3. आन्तरिक आपातकाल की स्थिति में कलेक्टर, एस. पी. और जिला न्यायाधीष मिलकर तानाषाही ही कर सकते हैं क्योंकि अभियुक्त को अपना बचाव पक्ष रखने का अवसर दिये बिना ही सजा दे दी गई है?

उत्तर तानाषाही की परिभाषा यह होती है कि उक्त अवधि में किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा अपने अधिकारों में असीमित वृद्धि कर ली जाती है। मेरे प्रस्ताव में ये तीनों अधिकारी मिलकर अपने अधिकार नहीं बढ़ा रहे बल्कि सामान्य पुलिस और सामान्य न्यायालय के अधिकार गुप्तचर पुलिस और गुप्तचर न्यायालय को स्थानान्तरित कर रहे हैं। संभव है कि आपातकाल की घोषणा करने वाला अधिकारी ही असकी चपेट में आ जावें। अतः तानाषाही की षंका बिल्कुल व्यर्थ है। दूसरी बात यह भी है कि वर्तमान संविधान के अन्तर्गत तो बिना आपातकाल घोषित किये ही सामान्यकाल में भी तथा बिना न्यायालय की जांच के ही कलेक्टर और एस. पी. मिलकर किसी भी व्यक्ति को पहले जेल में डाल सकते हैं और उसके बाद समीक्षा होगी। मैं समझता हूँ कि वर्तमान अधिकार तानाषाही पूर्ण तथा घातक हैं क्योंकि इनमें राजनेताओं का भी हस्तक्षेप संभव है। मेरे प्रस्ताव में राज्य या राज्य की कोई इकाई हस्तक्षेप नहीं कर सकती क्योंकि सामान्य पुलिस और सामान्य न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से इसे बाहर रखा गया है।

संविधान संषोधन

सृष्टि के प्रारम्भ से ही समाज में सामाजिक और समाज विरोधी प्रवृतियों के बीच संघर्ष चलता रहा है। इस संघर्ष में समाज विरोधी तत्वों को नियंत्रित करने का दायित्व संभालने वाली इकाई को षासन या राज्य कहते हैं। राज्य का नियंत्रित करने की आवष्यकता होती है किन्तु राज्य को नियंत्रित करने की कोई और इकाई अब तक नहीं बन सकी हैं तथा राज्य की स्वतंत्र अधिकारिता की कोई न कोई सीमा अवष्य ही होनी चाहिये। अतः राज्य के अधिकारों की सीमा निर्धारित करने वाले प्रावधान समूह को संविधान कहते हैं।

दुनिया के अधिकांष देषों में संविधान बने हुए हैं। प्रजातांत्रिक देषों में तो संविधान अनिवार्य रूप से होता ही है। चूँकि संविधान जनता द्वारा राज्य की सीमाओं को बताने वाला दस्तावेज होता है अतः स्वाभाविक ही है कि राज्य या संसद संविधान के अनुसार ही कार्य करने के लिये बाध्य है तथा संसद को संविधान के अन्तर्गत रहना अनिवार्य होता है। इस तरह किसी भी व्यवस्था में संविधान का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है।

चूँकि संविधान जनता द्वारा निर्मित या स्वीकृत दस्तावेज होता है अतः आवष्यक है कि उसमें संषोधन या परिवर्तन भी जनता के द्वारा ही किया जाये।

किन्तु संविधान में कई प्रकार के संषाधनों की आवष्यकता पड़ती रहती है तथा हर बार जनमत संग्रह की प्रक्रिया अपनाना खर्चीला तथा कठिन कार्य होता है। अतः संविधान संषोधन हेतु कोई सरल प्रक्रिया भी संविधान में बनाई जाती है। इस प्रक्रिया में तीनों बातों का ध्यान आवष्यक होता हैः–

1. संविधान संषोधन की प्रक्रिया इतनी कठिन और जटिल न हो कि संविधान संषोधन संभव ही न हो तथा यथास्थिति ही निरंतर चलती रहे।
2. संविधान संषोधन इतना आसान न हो कि बिना जरूरत के या बिना ठीक से विचार किये ही बार–बार संविधान संषोधन होता रहे।
3. संविधान संषोधन की प्रक्रिया इतनी मजबूत हो कि संविधान के आधार पर चलने वाली इकाइयॉ विधायिक, न्यायपालिका और कार्यपालिका अपने हित में उसका दुरुपयोग न कर सकें। भारत में वर्तमान संविधान में पहली दो बातों का तो

ध्यान रखा गया है किन्तु तीसरी बात को बिल्कुल ही भुला दिया गया। जिस विधायिका पर नियंत्रण रखने के लिये संविधान की आवष्यकता होती है उसी विधायिका को संविधान में संषोधन के अधिकार देना एक बहुत बड़ी भूल मानी जायेगी। किसी भी इकाई के अन्तर्गत कार्य करने वाली इकाई को उस इकाई में ही परिवर्तन संषोधन का अधिकार देना कितना उचित है यह बिल्कुल सामान्य सी बात है। किन्तु भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस सामान्य सिद्धांत का भी ध्यान नहीं रखा। यदि और कुछ संभव नहीं था तो कम से कम इतना तो अवष्य ही प्रावधान करना था कि संविधान संषोधन जैसे कार्य में विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का समान समन्वय हो। किन्तु दुर्भाग्य ही है कि विधायिका को संविधान संषोधन के असीमित अधिकार दे दिये गये। हद ही हो गई कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान के मूल अधिकारों वाले प्रावधानों

को भी सुरक्षित नहीं रखा तथा संसद को उनके भी परिवर्तन का अधिकार प्रदान कर दिया। या तो वे लोग मूल अधिकार का अर्थ ही नहीं समझ सके या उनके पास कोई और विकल्प ही न रहा होगा। इस तरह भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान में यह व्यवस्था कर दी कि संसद दो तिहाई बहुमत से संविधान की किसी भी धारा में परिवर्तन, संषोधन या निरसन कर सकती है। यहां तक कि संसद के ऐसे कार्य के विरुद्ध किसी न्यायालय को सुनवाई करने का कोई अधिकार नही होगा। इस तरह संविधान के उपर संसद हो गई और संसद में राजनेताओं का ही एकाधिकार होता है। अतः स्वाभाविक ही था कि राजनेता एक ग्रुप के रूप में संविधान के उपर हो गये अर्थात् तानाषाह बन गये। समय–समय पर राजनेताओं ने इस प्रावधान का खुलकर दुरुपयोग किया। संविधान में अंग्रेजी को या आरक्षण को जारी रखने की जो समय सीमा निष्चित थी उसे अपने राजनैतिक हितों के लिये मनमाने रूप में आज तक संषोधित किया जाता रहा। इसी तरह श्रीमती गांधी का चुनाव जब अवैध हो गया तो संसद ने संविधान में कई संषोधन करके श्रीमती गांधी को तानाषाह बनने का मार्ग प्रषस्त किया। यहां तक कि उक्त कार्यकाल में मूल अधिकार तथा उद्देष्यिका तक में फेरबदल कर दिया गया। राजीव गांधी जी के कार्यकाल में भी षाहबानों प्रकरण में जब न्यायालय तक ने पूरे मामले को अवैधानिक घोषित कर दिया तो राजनेताओं ने अपने तुच्छ स्वार्थों के लिये सम्पूर्ण असंवैधानिक कार्य को संविधान द्वारा ही संवैधानिक बना दिया। अभी अभी राजनेताओं ने अपनी पारिवारिक बपौती को और मजबूत बनाने के उद्देष्य से महिला आरक्षण का संषोधन भी पारित कराने का प्रयास षुरू किया है। इस तरह संविधान संषोधन के असीमित अधिकार संसद के पास रहने का भरपूर लाभ राजनेताओं ने उठाया है।

मैंने प्रस्तावित संविधान में इस बात की आवष्यकता महसूस की कि संविधान संषोधन की एक अलग प्रक्रिया होनी चाहिये। मेरा सुझाव इस प्रकार है–

1. संविधान की वर्तमान प्रक्रिया यथावत रहेगी किन्तु संसद ऐसे संविधान में सिर्फ प्रस्तावक होगी, निर्णायक नहीं। संसद द्वारा पारित प्रस्ताव संविधान सभा में स्वीकृति के लिये जायेगा।
2. वर्तमान समय में कोई संविधान सभा अस्तित्व में नहीं है किन्तु मैंने एक संविधान सभा का प्रस्ताव किया है। इस प्रस्तावित संविधान सभा में कुल एक सौ दस सदस्य होंगे। इसमें देष के सौ प्रान्तों में से प्रत्येक प्रान्त से डिग्री कालेज या उपर के कालेज का एक प्राचार्य तथा अन्य दस चयनित सदस्य होंगे जो पूर्व राष्ट्रपति, पूर्व प्रधान मंत्री तथा पूर्व मुख्य न्यायाधीष से कम योग्यता के नहीं होंगे। डिग्री कालेज के प्राचार्य का चुनाव उस क्षेत्र के कालेजों के प्रोफेसर्स मिलकर करेंगे। उक्त पद को प्राचार्य तक ही सीमित इसीलिये किया गया है कि डिग्री कालेज तक के आचार्य तथा प्राचार्यो को संवैधानिक रूप से राजनीति में सक्रिय भागीदारी से प्रतिबंधित किया गया है। यद्यपि वे षासकीय सेवक नहीं हैं। इससे संविधान सभा राजनेताओं की घुसपैठ से सुरक्षित रहेंगी।
3. मैंने एक प्रस्ताव यह भी किया है कि यदि मूल अधिकार में कोई संषोधन करना हो तो संसद तथा संविधान सभा के प्रस्ताव पर जनमत संग्रह कराना अनिवार्य होगा।

प्रष्न 1. यह तो सही है कि संविधान संषोधन हेतु संसद को ही अधिकृत करना गलत था। किन्तु संविधान सभा का आपने जो प्रारूप रखा है उसमें सिर्फ प्राचार्य ही क्यों? सामाजिक कार्यकर्त्ता या न्यायाधीष या वकीलों की संविधान सभा क्यों नहीं?

उत्तर संविधान सभा बनाने का एक ही उद्देष्य है कि उसमें राजनीतिज्ञों से भिन्न लोग ही आ सकें। यदि राजनेताओं की ही टीम रही तो चाहे दस ऐसी टीमें बना दी जावे, परिणामों में अधिक अन्तर नहीं होगा। प्राचार्यों को अपने सम्पूर्ण सेवा काल में राजनीति में भाग लेने पर प्रतिबन्ध रहेगा। उनके मतदाता भी राजनीति में भाग नहीं ले सकेंगे। डिग्री कालेज या उससे उपर के कालेज के प्राचार्यों के अतिरिक्त कोई ऐसा वर्ग नहीं है जिसे राजनीति का ज्ञान तो हो किन्तु भागीदारी न हो। क्या वकील या सामाजिक कार्यकर्त्ता राजनीति से पृथक रहने हेतु तैयार होंगे? क्या मतदाताओं की कोई ऐसी टीम बन सकती है जो घोषित रूप से राजनीति निरपेक्ष हो और रहे भी? स्पष्ट है कि नहीं। यदि डाक्टर को रखा जायेगा तो स्पष्ट है कि उन्हें राजनीति की जानकारी नहीं है तथा न्यायाधीष वर्ग भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि किसी भी संविधान संषोधन को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। इस तरह मैंने बहुत सोंच समझकर संविधान सभा को प्राचार्यों तक सीमित किया है।

प्रष्न 2. आप कैसे महसूस करते हैं कि प्राचार्यों की टीम राजनेताओं की स्वेच्छाचारिता पर अंकुष लगाने में सफल हो सकेंगी?

उत्तर अब तक संसद के दोनों सदन राजनेताओं के ही अधिकार में है। राजनैतिक दलों के लोग दलीय आधार पर दोनों सदनों में घूमते फिरते रहते हैं। नये प्रस्तावों में लोकसभा तो राजनेताओं का अखाड़ा हो जायेगी किन्तु राज्यसभा (परिवार सभा) बिल्कुल भिन्न तरीके से चुनी जायेगी। उसमें राजनेताओं का प्रवेष नगण्य ही हो सकेगा। इस तरह राजनेताओं की स्वेच्छाचारिता पर पहला अंकुष लगेगा। यदि मान लें कि परिवार सभा में भी कुछ राजनेता पहुंच गये तो संविधान सभा में तो राजनेताओं की पहुंच नगण्य ही हो पायेगी।

प्रष्न 3. आपने प्राचार्यों की टीम को इतना बड़ा काम सौंप दिया है तो क्या वे तानाषाह नहीं बन जायेंगे ।

उत्तर लगता है कि तानाषाही षब्द का अर्थ ही आप नहीं जानते। तानाषाह का अर्थ यह होता है कि एक ही व्यक्ति या टीम के पास विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के सर्वोच्च अधिकार इकट्ठे हो जावें। ये बेचारे प्राचार्य तो मात्र समीक्षा ही करेंगे। इनके पास विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में से किसी एक भी इकाई के अधिकार नहीं होंगे। वर्ष में एकाध बार संविधान संषोधन का प्रस्ताव आता है जिसकी समीक्षा मात्र इनको करनी है।

अन्य

समाज के सुव्यवस्थित संचालन के लिये अपराधियों के मन में समाज का भय होता है। भय की उत्पत्ति दण्ड के प्रावधानों से होती है। दण्ड का स्वरूप ऐसा होना चाहिये कि वह अपराध के महत्व के समकक्ष कठोर भी हो तथा दण्ड अमानवीय भी न हो। स्पष्ट है कि कोई भी दण्ड मानवीय हो ही नहीं सकता क्योंकि दण्ड स्वयं में मूल अधिकारों का हनन मात्र होता है। किन्तु दण्ड ऐसा तो हो सकता है कि वह आवष्यकतानुसार कठोरता को कायम रखते हुए विद्यमान मानवीय विकल्पों में से एक का चयन हो। हजारों वर्षों से फांसी की सजा विद्यमान है। हाल के सौ दो सौ वर्षो से सम्पूर्ण विष्व में यह मांग उठी है कि फॉसी की सजा को समाप्त कर दिया जाय क्योंकि वह अमानवीय है। दूसरी ओर अब भी अधिकांष लोग यह मानते हैं कि फांसी की सजा को और अधिक लागू किया जाये क्योंकि जब से फांसी कम हुई है तब से हत्या जैसे जघन्य अपराध तीव्र गति से बढ़े हैं। दुनियां के अधिकांष देषों में फांसी का प्रावधान भी है किन्तु फांसी का उपयोग अपवाद स्वरूप ही होता है। फांसी के पक्ष विपक्ष में निरंतर बहस जारी है।

मैंने संविधान के प्रस्तावित प्रारूप में इस बात पर गंभीरता से सोचा है। मेरे विचार से फांसी की सजा को समाप्त करना उचित नहीं है किन्तु फांसी की सजा का एक ऐसा विकल्प खोजा जा सकता है जो फांसी की सजा के समकक्ष ही कष्ट कारक हो। मैंने प्रस्ताव किया है कि फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति यदि जीवित अवस्था में दोनों आंख देकर जीवित रहना चाहे तो उसे तब तक जमानत पर जीवित रहने की छूट दी जा सकती है जब तक वह उन षर्तों को माने जो कोर्ट तय करें। मैंने इस संबंध में बहुत गंभीरता से और बहुत सोचा तथा चर्चा की। चर्चा के बाद में संतुष्ट हूँ कि मेरा प्रस्ताव ठीक है।

प्रष्न 1. किसी व्यक्ति की दोनों आंखे निकाल कर उसे अंधा बनकर रहने को मजबूर करना कितना मानवीय है?

उत्तर प्रष्न सिर्फ मानवीय अमानवीय का नहीं है बल्कि फांसी के विकल्प का है। मेरे विचार से तो किसी व्यक्ति की हत्या और उसके जीवित अन्धेपन में से कौन अधिक अमानवीय है यह तय करना बहुत कठिन है। फिर, एक बात यह भी तो है कि किसी व्यक्ति को कोई आदेष देने के साथ साथ यदि कोई समकक्ष विकल्प दिया जाता है तथा दोनों में कोई एक विकल्प चुनना उसकी मर्जी पर है तो वह विकल्प अमानवीय हो ही नहीं सकता चाहे वह कितना भी अमानवीय क्यों न हो। कल्पना करिये कि किसी व्यक्ति को फांसी की सजा हुई। वह व्यक्ति एक दो माह अन्धी अवस्था में भी जीवित रहकर लड़की का विवाह या कोई अन्य कार्य पूरा करना चाहता है। आप बताइये कि उसे कुछ दिन उस की इच्छानुसार जीवित रहने की छूट देना अमानवीय है या फांसी? वह व्यक्ति तो जमानत पर है। यदि वह षर्त तोड़ता है तो फांसी या स्वयं निवेदन करता है तब फांसी। फांसी की सजा तो कायम है ही।

प्रष्न 2. यदि किसी अपराधी ने अंधा रहकर अपराध किया तो दोषी कौन होगा?

उत्तर वह व्यक्ति कुछ षर्तों पर छूटेगा। भरसक तो अंधा व्यक्ति अपराध कर ही नहीं सकेगा और यदि करेगा तो उसे सजा मिलेगी। मेरे विचार में यह सुझाव बहुत उपयुक्त है।

परिवार नियोजन

दुनियां में आबादी निरंतर बढ़ रही है। संतान पैदा करना व्यक्ति का मूल अधिकार है किन्तु चूंकि उक्त संतान पैदा होते ही व्यक्ति की सम्पत्ति न रहकर स्वयं में एक इकाई बन जाता है, अतः संतान का जन्म लेना व्यक्ति का मूल अधिकार होते हुए भी सामाजिक संबंधों से जुड़ा हुआ है। इस तरह संतान उत्पत्ति का मामला समवर्ती सूची में माना जाना चाहिए।

सम्पूर्ण विष्व में परिवार या गांव जैसी छोटी इकाइयॉ जनसंख्या वृद्धि से चिन्तित नहीं है किन्तु राष्ट्र या विष्व व्यवस्था इस समस्या से बहुत चिन्तित है। अब तक आबादी वृद्धि पर रोक के सभी स्वैच्छिक उपाय अब तक नहीं किये गये हैं क्योंकि वह व्यक्ति का मूल अधिकार है। चीन जैसे देषों ने तो कानूनी प्रतिबंध लगाये भी हैं। किन्तु भारत इसमें अब तक बचता रहा है। मैंने भी इस संबंध में बहुत विचार करते हुए यह प्रस्ताव किया है कि संसद उन बच्चों के माता पिता को षासन द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं या धन को रोक सकेगी जिसके संसद की बनाई सीमा से अधिक संतान होंगी। यद्यपि यह व्यवस्था बिल्कुल लचर दिखाई देती है, किन्तु मुझे ऐसा महसूस होता है कि इससे अधिक कठोर प्रावधान करना उचित नहीं होगा। यदि कोई कठोर प्रावधान बनाना ही होगा तो संघ सभा उस पर भले ही सोचे किन्तु सरकार या संविधान को अधिक कठोर नहीं होना चाहिये।

प्रष्न 1. इस संषोधन से तो यह भी हो सकता है कि अमीर लोग बच्चे पैदा करें और गरीब बेचारे न करें?

उत्तर बच्चों का कम या अधिक होने से गरीबी अमीरी के साथ क्या संबंध है? यदि अमीर लोगों ने अधिक बच्चे कर लिये और गरीब नहीं किये तो गरीबों का क्या बिगड़ गया? जब आर्थिक असमानता अस्तित्व में है तथा लगातार बढ़ रही है तब आर्थिक असमानता की चिन्ता न करके गरीबों के बच्चों की घटती संख्या की चिन्ता करने का क्या औचित्य है? अतः आपसे निवेदन है कि इस प्रष्न को गरीबों की संख्या से जोड़ कर मत देखिये।

षस्त्र धारण

षस्त्र एक ऐसी निर्जीव वस्तु है जो व्यक्ति की षक्ति को कई गुना बढ़ा देती है। षस्त्र स्वयं में निर्णय नहीं कर सकता कि क्या उचित है और क्या अनुचित। षस्त्र सामान्य नागरिक की सुरक्षा में सहायक होता है तथा अपराधियों के आक्रमण में। षस्त्र की भूमिका आक्रमण और सुरक्षा में समान होती है। तथा यह तो उपयोग करने वाले पर निर्भर करता है कि वह सुरक्षा के उद्देष्य से षस्त्र का उपयोग करता है कि आक्रमण के। अब तक संवैधानिक व्यवस्था यह है कि आन्तरिक या बाह्य सुरक्षा कार्य में लगे सुरक्षा कर्मियों को षस्त्र रखने की छूट दी गई है तथा अपराधियों के षस्त्र रखने पर पूर्णतः रोक है। अपराधी किसी भी हालत में षस्त्र नहीं रख सकते। किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि अपराधी तत्व पूरी तरह षस्त्रों से लैस है। अनेक अपराधियों के पास तो अति आधुनिक षस्त्र तक विद्यमान हैं। अपराधी अपराध करने में षस्त्रों का खुला प्रयोग कर रहे हैं। सरकार षस्त्र नियंत्रण तथा अपराध नियंत्रण में विफल है। सरकार ने अपराध नियंत्रण के और अधिक कारगर तरीके खोजने की अपेक्षा आम नागरिकों को भी कुछ षर्तों के साथ षस्त्र रखने के लाइसेंस दिये। परिणाम यह हुआ कि घर घर में षस्त्रों की होड़ षुरू हो गई। घरों में लाइसेंसी षस्त्र होने से आम नागरिकों में जितना सुरक्षा का भाव मजबूत हुआ उससे कई गुना अधिक उनके अन्दर षक्ति प्रदर्षन का भाव मजबूत हुआ। उसी का नतीजा हुआ कि षस्त्र अपराध नियंत्रण में तो षायद ही कहीं सफल हुआ हो किन्तु आपसी टकराव वृद्धि में इसकी बहुत बड़ी भूमिका बन गई। मुझे आष्चर्य होता है कि जो सरकार षस्त्रों को अपराध नियंत्रण में सहायक समझती है वही सरकार चुनाव या पर्व त्यौहार के समय सबके षस्त्र जप्त क्यों कर लेती है? इसका मतलब है कि षस्त्र आपसी विवाद वृद्धि में सहायक होते हैं।

मेरी यह धारणा है कि अपराध नियंत्रण सरकार का दायित्व है। षस्त्र लायसेंस देकर उस दायित्व से मुंह चुराना सरकार की गलती है। मैंने प्रस्तावित संविधान में यह स्पष्ट व्यवस्था की है कि सुरक्षा कार्यों में लगे कर्मियों के अतिरिक्त किसी भी नागरिक को किसी भी प्रकार का कोई षस्त्र रखने की अनुमति नहीं होगी। ऐसे प्रावधान के बाद अपराधियों के षस्त्र पकड़ना कुछ और आसान होगा क्योंकि जब आम लोग षस्त्र नहीं रखेंगे तो षस्त्र अवैध हैं कि वैध यह जानने की कोई समस्या नहीं रहेगी।

नई व्यवस्था के उद्देष्य से प्रस्तावित भारतीय संविधान में संषोधन के कुछ प्रमुख अंष

1. भारतीय संविधान के (Preamble) उद्देष्यिका से समता षब्द निकालकर स्वतंत्रता षब्द स्थापित हुआ है जिससे षासन को इकाइयों के इकाईगत निर्णय में हस्तक्षेप का बहाना समाप्त हो जावे।
2. मूल अधिकारों में से निरायुद्ध सम्मेलन, बलात् श्रम निरोध, धर्म की स्वतंत्रता, षिक्षा की स्वतंत्रता आदि अनावष्यक षब्दों को हटाकर स्व निर्णय षब्द स्थापित किया गया है जिससे व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में सरकारी हस्तक्षेप के अवसर ही समाप्त हो जावें।
3. मूल अधिकारों में से भारत के किसी भी भाग में निर्वाध संचरण तथा कहीं भी बस जाने जैसे षब्दों को निकाल दिया गया है जिससे इकाइयॉ अपने इकाईगत क्षेत्र में सुदृढ़ हो सकें।
4. सम्पत्ति को मूल अधिकार में षामिल कर लिया गया है।
5. व्यक्ति के मूल अधिकारों की सुरक्षा का दायित्व राज्य पर इस सीमा तक दे दिया गया है कि असफल होने पर वह व्यक्ति को उचित मुआवजा देने को बाध्य होगा।
6. समाचार पत्रों की स्वेच्छाचारित पर अंकुष लगाने हेतु व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण की व्यक्तिगत आलोचना को अपराध माना गया है।
7. पूरे देष को आबादी के आधार पर एक सौ प्रान्त, दस हजार जिले और दस लाख गांवों में इस तरह विभाजित किया गया है कि भारत के प्रत्येक परिवार का नौ अंकों का एक निष्चित किया गया है कि भारत के प्रत्येक परिवार का नौ अंकों का एक निष्चित कोड नम्बर उसकी पहचान बन जावे।
8. पारंपारिक परिवार व्यवस्था को कानूनी हस्तक्षेप से मुक्त करते हुए कम्यून प्रणाली के साथ परिवार प्रणाली का इस तरह सामंजस्य बिठाया गया है कि परिवारों की संरचना को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो जावे।
9. अपराध नियंत्रण का पहला दायित्व परिवार पर डालने हेतु व्यवस्था की गई ताकि परिवार के किसी सदस्य द्वारा किये गये अपराध का दायित्व सम्पूर्ण परिवार का हो।

10. गांधी जी के ट्रस्टीषिप के सिद्धान्त के साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार का इस तरह सामंजस्य किया गया कि व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार समाप्त होकर सम्पत्ति परिवार की सामूहिक होगी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार होगा।
11. परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति तथा सभी पदों पर महिलाओं को भी समान अधिकार प्रदान किया गया है।
12. परिवार में वृद्ध व्यक्तियों के सम्मान की सुरक्षा हेतु परिवार में भी राष्ट्रपति के समान एक औपचारिक पद बनाया गया है जिस पर परिवार का सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति ही रह सकेगा।
13. प्रत्येक परिवार का ग्राम सभा में पंजीकरण अनिवार्य किया गया है जिससे सम्पत्ति, सदस्य संख्या पहचानने या कर लेने में सुविधा हो।
14. इकाइयों में अन्य षासकीय हस्तक्षेप समाप्त करने के लिये यह प्रावधान किया गया है कि व्यक्ति परिवार, गांव, जिला, प्रान्त तथा राष्ट्र अपनी अपनी चुनाव पद्धति तथा कार्य प्रणाली स्वयं तय करें।
15. चुनाव आयोग प्रत्येक निर्वाचन में गुप्त मतदान कराकर आष्वस्त होगा कि चुनाव से सब लोग किस सीमा तक सहमत हैं।
16. आन्तरिक सुरक्षा, बाह्य सुरक्षा, विदेष, न्याय और वित्त विभाग को छोड़कर अन्य किसी भी मामले में षासकीय हस्तक्षेप और दायित्व षून्य होगा जिससे कि इन पांच को छोड़कर अन्य सारे दायित्व परिवार, ग्राम सभा या अन्य इकाइयॉ स्वतंत्र रूप से देख सकें।
17. प्रत्येक सभा नीचे की इकाइयों द्वारा गठित की जायगी तथा ऐसी इकाइयॉ जिस सभा का गठन करेंगी वह स्वयं ही अपने अधिकार और कर्तव्य तय कर सकेगी। इससे व्यवस्था के अधिकार उपर से थोपे नहीं जायेंगे। बल्कि वे नीचे की इकाइयों से प्राप्त होंगे।
18. कोई सभा या पंचायत कोई कर नहीं लगा सकेगी बल्कि अपना खर्च फीस या चन्दे से पूरा करेगी जिससे सभा या पंचायत का स्वरूप षासक का न होकर व्यवस्था का हो।
19. अपराध नियंत्रण सरकार का दायित्व होगा जिससे अपराध नियंत्रित भारत की ओर तीव्र गति से बढ़ा जा सके।
20. अपराधों पर प्रभावकारी नियंत्रण हेतु आन्तरिक आपातकाल की स्थिति में गुप्त मुकदमा प्रणाली षुरू की जायगी जिससे अपराधियों पर सक्षम नियंत्रण भी हो सकेगा तथा वर्तमान कार्यपालिका के तानाषाही अधिकार समाप्त होकर वास्तविक लोकतंत्र आ सकेगा।
21. पूरे देष में न्यायालयों को और अधिक स्वतंत्रता देने के उद्देष्य से प्रस्तावित है कि दण्ड प्रकिया संहिता में कोई भी संषोधन मुख्य न्यायाधीष के प्रस्ताव पर ही किया जा सकेगा।
22. सरकार सम्पूर्ण सम्पत्ति पर अधिकतम 2 प्रतिषत तक कर लगा सकेगी। इससे सरकार की मनमाने खर्च पर रोक लग सकेगी।
23. देष की प्रगति का मापदण्ड न्यूनतम श्रम मूल्य होगा। श्रम मूल्य में अपेक्षित वृद्धि के लिये कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि की जायगी।
24. सरकार के खर्च पूरे होने के बाद षेष धन पूरे देष के प्रत्येक परिवार में सदस्य संख्या के आधार पर वितरित कर दिया जायगा। इस प्रणाली का उद्देष्य आर्थिक असमानता को कम करना है। फिर भी यदि आर्थिक असमानता कम नहीं होती तो आर्थिक आपातकाल की घोषणा करके 2 प्रतिषत और कर लगाकर वितरित कर दिया जायगा।
25. पूरे देष में किसी भी व्यक्ति के साथ किसी भी स्थिति में धर्म, जाति, भाषा, लिंग आर्थिक स्थिति या उम्र के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायगा जिससे सरकार की दृष्टि में भारत सौ करोड़ व्यक्तियों का देष बन सके न कि धर्मों जातियों या अन्य वर्गों का संघ।
26. लोकसभा स्थायी होगी तथा उसका चुनाव प्रतिवर्ष 20 प्रतिषत सीटों पर होगा जिससे कि लोकसभा का चुनाव बार बार होने का खतरा भी टलेगा, विपक्षी दलों की जनमत की परीक्षा भी प्रतिवर्ष होती रहेगी तथा चुनाव आयोग को भी निरंतर कार्य मिलेगा। इस संषोधन से सरकार की नीतियों में भी एकाएक कोई बड़ा फेर बदल नहीं हो सकेगा।
27. किसी भी लोकसभा क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले जिला सभा के सदस्य चाहें तो अपने सांसद के विरूद्ध प्रस्ताव पारित करके उसकी सदस्यता समाप्त कर सकते हैं। इससे सांसद के चुनाव में खर्च घटेगा तथा सांसदों पर अंकुष भी लग सकेगा।
28. संसद के भीतर भी मूल अधिकार हनन होने पर न्यायालय में जाने की छूट दी गई है। इससे संसद के भीतर के झगड़े कम हो जावेंगे तथा विचार षान्तिपूर्वक सम्पन्न होगा।
29. राज्यसभा का नाम परिवार सभा होगा क्योंकि परिवार सभा का चुनाव परिवारों द्वारा क्रमषः चुनी गई प्रान्तीय सभा करेगी। चूँकि प्रान्तीय सभा अप्रत्यक्ष चुनावों द्वारा अराजनैतिक आधार पर बनती है अतः परिवार सभा में राजनीति या राजनेताओं का प्रवेष नगण्य ही संभव होगा।
30. सरकार सिर्फ अपने काम काज की ही भाषा तय कर सकेगी। अन्य इकाइयों की भाषा वे इकाइयॉ स्वयं तय कर सकेंगी।
31. सरकार विदेषों से संबंध बनाने में विष्व जनमत को ठुकराने के लिये स्वतंत्र नहीं होगी। यदि ऐसा आवष्यक होगा तो सरकार सिर्फ प्रस्ताव करेगी जिस पर संसद, संघ सभा तथा संविधान सभा मिलकर विचार करेंगे। इससे राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के बीच राष्ट्रवाद कमजोर होगा। युद्ध या टकराव भी कम होंगे।
32. राष्ट्र की अन्तिम सीमा का पंद्रह किलो मीटर का क्षेत्र सैनिक नियंत्रण में होगा जहां या तो कोई नहीं रहेगा या सरकार की स्वीकृति से रहेगा। इससे राष्ट्रीय सुरक्षा बहुत मजबूत हो सकेगी।
33. परिवार के सदस्य परिवार के मुखिया का चुनाव करेंगे तथा मुखिया लोक सभा या ग्राम सभा में मतदान करेगा जिसकी गिनती उसकी सदस्य संख्या के आधार पर होगी। इससे चुनाव खर्च भी घटेगा तथा गुणवत्ता भी बढ़ेगी।
34. किसी भी चुनाव में न्यूनतम वोट कुल वैध मतदान का आधे से अधिक प्राप्त करना आवष्यक होगा। यदि किसी चुनाव में एक ही उम्मीदवार हो तब भी उसे गुप्त मतदान द्वारा आधे से अधिक वोट लेना आवष्यक है। इससे दबाव या अल्पमत सरकारों का खतरा समाप्त होगा।
35. परिवार से लेकर राष्ट्र तक के सभी चुनाव, चुनाव आयोग की देखरेख में होंगे।
36. आपातकाल लगाने का सरकार का स्वतंत्र अधिकार नहीं रहेगा बल्कि सरकार की सलाह पर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा मुख्य न्यायाधीष मिलकर निर्णय करेंगे तथा ये तीनों ही मिलकर व्यवस्था करेंगे।
37. आपातकाल में भी व्यक्ति के मूल अधिकार सुरक्षित रहेंगे। सरकार सिर्फ 10 प्रतिषत तक आपातकर लगा सकती है।
38. मृत्युदण्ड घोषित व्यक्ति अपनी दोनों आंख निकलवाकर तब तक जमानत पर जीवित रह सकता है जब तक वह चाहे। इससे मृत्युदण्ड का एक मानवीय विकल्प खड़ा हो सकता है।
39. देष का सारा हिसाब किताब मूल रुपया के आधार पर रखा जायगा। इससे मंहगाई, मुद्रा स्फीति या कृत्रिम मूल्य वृद्धि समाप्त हो जायगी।
40. सुरक्षा कर्मियों को छोड़कर घातक अस्त्र षस्त्र रखने पर पूरा प्रतिबंध होगा।
41. संविधान में किसी भी प्रकार का संषोधन संसद के प्रस्ताव पर संविधान सभा की सहमति से ही हो सकेगा। इससे संसद के एकाधिकार पर अंकुष लगेगा।
42. संविधान सभा प्रत्येक प्रान्त से एक प्राचार्य (Principal) तथा दस पूर्व न्यायाधीष पूर्व प्रधानमंत्री एवं पूर्व राष्ट्रपतियों को मिलाकर बनेगी। प्राचार्यों का चुनाव प्रोफेसर्स करेंगे।
43. डिग्री कालेज या उसके उपर के कालेज के आचार्य या प्राचार्य अपने सम्पूर्ण षिक्षण काल में राजनीति में भाग नहीं लेंगे। इससे संविधान सभा की टीम राजनीति से विलग हो जायगी।

44. संसद और संविधान सभा मिलकर भी व्यक्ति के मूल अधिकारों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकेंगे जब तक जनमत संग्रह द्वारा आम स्वीकृति न हो जावें।
45. संसद सदस्यों के वेतन और भत्ते संघ सभा तय करेगी। इससे संसद के अपने वेतन भत्ते तथा सुविधाएँ तय करने पर रोक लग जायेगी।